

शब्द
कविता-साग्रह



वाणी प्रकाशन

दिल्ली-110007

श्री

त्रिलोचन

श्री लुब्धुनी, नागरी भण्डार

५ १५-३, चन्नाग

स्टेशन रोड, बीकानेर

भाषी प्रवाहन
61 एम कमलानगर दिल्ली 110007
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण 1980
त्रिलोचन शास्त्री

मूल्य 18 00 रुपये

ज्ञान प्रिंटर्स
रोहयाकानगर गाहदरा दिल्ली 32
द्वारा मद्रित

SHABD (collection of poems)

by Trilochan

अग्र कवि
श्री कण्ठरनाथ अग्रवाल को

ज्ञप्ति

इस सकलन की कविताओं का रचनाकाल 1962 की पहली जनवरी से 10 अप्रैल तक है, इसी कारण प्रत्येक रचना के साथ तिथि का अंकन मुझे अनावश्यक जान पडा। प्रस्तुत सकलन की कुछ ही कविताएँ पत्र पत्रिकाओं में पूर्वप्रकाशित हैं अधिकतर यहाँ पहले पहल प्रकाशित हो रही हैं।

उर्दू विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली 110007

त्रिलोचन

क्रम

| | | |
|----|-------------------------|----|
| 1 | दुःखागार है जगत् | 13 |
| 2 | क्या जाने क्या | 13 |
| 3 | बहती सहरो स | 14 |
| 4 | धूल चरण से जो उड़ती है | 14 |
| 5 | वीन बजाने वाली | 15 |
| 6 | काल महामागर की सहरो पर | 15 |
| 7 | कोलाहल का बीजारीपण | 16 |
| 8 | कल गुलाब जो खिला हुआ था | 16 |
| 9 | हृदय हृदय के भाव वसन | 17 |
| 10 | जहा जहाँ सधान किया | 17 |
| 11 | दुख सं दवे हुए मानव | 18 |
| 12 | देख रहा हूँ | 18 |
| 13 | एक समय धाता है | 19 |
| 14 | भपना ही दुख | 19 |
| 15 | दुश्चिन्तामो को | 20 |
| 16 | स्निग्ध कूट कोशल | 20 |
| 17 | उड़ते हैं पारावत | 21 |
| 18 | जल के हिल जाने पर | 21 |
| 19 | जाड़े का दिन | 22 |
| 20 | नाव चल रही है | 22 |
| 21 | पीछे हरियाली है | 23 |
| 22 | बादल छाए हैं | 23 |
| 23 | समाच्छन्न है गगन | 24 |
| 24 | स्लेटी बादल | 24 |
| 25 | केन किनारे | 25 |

| | | |
|----|-----------------------------|----|
| 26 | सूरज का प्रकाश | 25 |
| 27 | लौट रही है बस | 26 |
| 28 | कल्पवासियों की बस्ती | 26 |
| 29 | जीवन अब तक | 27 |
| 30 | गह गूह मे | 27 |
| 31 | सध्या | 28 |
| 32 | हवा | 28 |
| 33 | कृष्ण वण मेघो से | 29 |
| 34 | वही धूप | 29 |
| 35 | कभी कभी लगता है | 30 |
| 36 | अभी अभी जो चला गया | 30 |
| 37 | हरितकृष्ण पत्रो के | 31 |
| 38 | धूल | 31 |
| 39 | गात हुए गले | 32 |
| 40 | शब्दकार | 32 |
| 41 | स्वर-समुद्र | 33 |
| 42 | मरकत मणि | 33 |
| 43 | कुठ आखो से | 34 |
| 44 | आहत शब्दा से | 34 |
| 45 | शब्द शब्द से | 35 |
| 46 | जीवन की शराब | 35 |
| 47 | इतने पर भी | 36 |
| 48 | सुभाषचन्द्र वसु | 36 |
| 49 | महात्मा गांधी | 37 |
| 50 | आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र | 37 |
| 51 | जिस घर मे | 38 |
| 52 | मुझ से | 38 |
| 53 | बहुत पहले | 39 |
| 54 | महाकाश का कलश | 39 |
| 55 | चड़ने वाले पक्षी | 40 |
| 56 | उकठे हुए पेड पर | 40 |
| 57 | ज्वररतें | 41 |
| 58 | शब्दो मे | 41 |
| 59 | चाँद कहीं है | 42 |

| | | |
|----|-------------------|----|
| 60 | जहाँ कहीं भी देखा | 42 |
| 61 | चिताभो के ऊपर | 43 |
| 62 | सुंदर आँखें | 43 |
| 63 | शब्दा के द्वारा | 44 |
| 64 | ये पाँव | 44 |
| 65 | अस्ताचलगामी रवि | 45 |
| 66 | जब जब बाहर स आया | 45 |
| 67 | कितन डर है | 46 |
| 68 | डर लगता है | 46 |
| 69 | विश्व का यह जीवन | 47 |
| 70 | जीवन याना है | 47 |
| 71 | कोकिल का कूजन | 48 |
| 72 | नए रूप नई रखाएँ | 48 |
| 73 | गत दिवसा की वीणा | 49 |
| 74 | ईश्वर | 49 |
| 75 | बार बार क्या | 50 |
| 76 | आत्मवल्याण | 50 |
| 77 | और लोग | 51 |
| 78 | एनस्वित है विश्व | 51 |
| 79 | किसी किसी की बात | 52 |
| 80 | जीवन म हम | 52 |
| 81 | गुलाब | 53 |
| 82 | मोहन आनंद | 53 |
| 83 | छूट रहे हैं बाण | 54 |
| 84 | सस्वर सौंदर्य | 54 |
| 85 | राग उडते हैं | 55 |
| 86 | हार हार कर | 55 |
| 87 | कोई स्थान | 56 |
| 88 | तुम से | 56 |
| 89 | मजरियों की गंध | 57 |
| 90 | अपना पान | 57 |
| 91 | अधिकारोत्तर कर्म | 58 |
| 92 | उत्सुक नयन | 58 |
| 93 | मिली कहाँ | 59 |

| | | |
|-----|---------------------|----|
| | । के ही दीप | 59 |
| | न के दिन | 60 |
| 94 | रागो घोर ही | 60 |
| 95 | मग की छाया | 61 |
| 96 | रगर भुवन भ | 61 |
| 97 | तरुता दिन का रग | 62 |
| 98 | प्या न की डोर | 62 |
| 99 | बद, क बूट | 63 |
| 100 | चे, री से कहा | 63 |
| 101 | संभ्रम तुष्टि | 64 |
| 102 | व, व दीपालोक | 64 |
| 103 | अज्ञ गए है लोर | 65 |
| 104 | नीयलिया के फूल | 65 |
| 105 | सूख दो चार | 66 |
| 106 | अज्ञे मुझमे शब्द | 66 |
| 107 | कितना रोकेंगे | 67 |
| 108 | बो, मुमखिया | 67 |
| 109 | कितिक्षा | 68 |
| 110 | भयमडा | 68 |
| 111 | तीपहरी है | 69 |
| 112 | आवण घारासार | 69 |
| 113 | दारीप खिला है | 70 |
| 114 | रहा वही ये स्वप्न | 70 |
| 115 | गिवन जब तक शेष रहगा | 71 |
| 116 | व | |
| 117 | उ | |

दुसागार है जगत, फिर भी सुख-सपना का 1
 भजन अजि हुए अखि मे जो चलते हैं
 भवन पथ पर वे सहास मुख यदि पलते हैं
 मधुर कल्पना के पलने पर तो भवना का
 भवनापन इमना कारण है, उह मना या
 भवलवन है जो पर को हर दम खलत हैं—
 बचारे ईर्ष्या की ज्वाला म जलत हैं—
 गीत जगते, उन्हें वहाँ विरनास जनों का

भवनापन ही देखा करती है जो अखें
 उनमें ज्योति और ही ऐसी आ जाती है
 जिसके पानी से दुनिया सारी की सारी
 रंग जाती है और कल्पना छोले पाँखें
 नई उडानों भर कर वहाँ वहाँ जाती है
 जहाँ जहाँ छवि बठी है आकषणकारी

2 क्या जान क्या जी मे आया तुम्हे बुलाया
 मैं न, अपनी लहरा मे तुमको लहरात
 पाया, फिर भवन को रोक न पाई, आत-
 जाते लोगो से तुम अलग लगे, अलगाया
 मैं न आवाहन से भवन फिर अपनाया
 आँसो से, बाणी स, मन से, जाते जात
 तुमको और और अपनाया, गात गाते
 जस सुर भवना बनता है वसे पाया

बासती सध्या की नारगी रगीनी
 वही आज भी वातावरण बना जाती है
 जब जब सून मे होती हूँ, मन की बातें
 केवल मन सुनता है, अब भी भीनी भीनी
 रम वपा होती है कौन मना जाती है—
 मेरे रुठे दिन पर हँस देती है रातें

3

बहती लहरो से यदि कोई प्यार कर तो
 जैसे बरे, बरे तो सग सग बहना है
 उसको भी—अस्थिर से अस्थिर हो रहना है
 सदा सदा के लिए किसी दिन कही भरे तो
 भरे फूल सा बह जाना है—हरे भरे तो
 दूर दूर वाले रहते हैं, क्या कहना है,
 तट वातो को—प्राय प्रखर वेग सहना है
 धारा का, निदित होना है कही डरे तो

बहती लहरो को ही मैंने प्यार किया है
 फिर भी, क्या जाने क्यों, दायद नादानी हो
 यह हिसाबिया के हिसाब से, मैंने अपना
 जीवन बहती लहरा पर ही चार दिया है
 पहली ही उमम मे यदि पन मे पानी हो
 तो सत्य ही प्रमाणित होगा देखा सपना

4

धूल चरण से जा उड़ती है उडा करेगी
 जब तक पथ है और पथिक है, सधे चरण से
 उठी धूल चदन बन जाएगी, अनुगामी
 उसे रमाएंगे, पथधारा मुडा करेगी
 उस गतिधारा के मोडो पर, जुडा करेगी
 जनतरंगिणी अपने नूतन रग दिखाती
 और महत्वाकाशाओ के वेतु संभाले
 आवर्तो मे दपभावना बुडा करेगी

जब तक पथ है पथिक तभी तक कितु चरण का
 विचरण कम खने वाला है पवत घाटी
 नदी सिंधु, वातार मौन साक्षी है गति के
 भूतल पर ऊपर रवि गणि-नारक परिपाटी
 देख रही है—दो पैरो के लिए वरण का
 रोध नहीं है और कहीं भय नहीं मरण का

वीन बजाने वाली, मैं ने जो मुर साधा
 वह तेरे ही एष इशारे का बल पा कर
 श्रीर गही ता मुझम क्या था मैं घ्रा जा कर
 गली गली में भटक चुपा था, केवल बाधा
 दिखलाई देती थी मुझका जब आराधा
 तुमकी मनसा गुमन घटा कर तब तो घ्राकर
 मुर के खुल खुल चले भाव पर भाव बता कर—
 ऐसे जीवन के प्रश्नों की हुई समाधा

5

देखा वह तेरा ही स्मित है जो इस जग के
 जीवन का आनंद बना है, चितवन तेरी
 ही है जो निगूढ तम का छेदन करती है
 मनीनिवायो म स्थित रह कर सब के मग के
 अहोरात्र, अत स्पदन में वरुणा भेरी
 तेरी ही बज कर भय का भेदन करती है

6 काल महासागर की लहरा पर मैं ठहरा,
 आगे-पीछे अगल बगल सब घूम घूम कर
 देख रहा हूँ—जलशिलरा को झूम झूम कर
 उठत, टकराते, लय होत कितना गहरा
 तल है कोई कैसे जाने, माहस पहरा
 देना है विश्वास अकेला रम रम कर
 अटल उत्तिनीपा के तट से लूम लूम कर
 लहराता है ही जाता है आव इवहरा

उन लहरा पर है जिनके तल में भापाएँ
 कितनी बँठ चुकी हैं कितने सुंदर सपने
 बिला चुके हैं पानी बन कर, सत्य कभी का
 मसत ही चुका है अब नई नई आशाएँ
 — दिग्दिगत आकाश मिधु वसुधा पर अपन
 अपने रूप सँवार रही हैं, भाव अभी का

कोलाहल का बीजारोपण कोलाहल को 7
जन्म दिया करता है यदि सगीत के लिए
कई कोलाहल का पकड़े, जीत के लिए
दुदुभि का निर्घोष करे तो इससे छल को
प्रबल समथन मिन सकता है लेकिन कल को
क्या होगा—मन का एकाकी गीत के लिए
कोलाहल में ठहरेगा भी ? गीत के लिए
बरसों बाट जोहते हैं विस्मय कर पल को

देखी हैं वे मोन विचरन वाली घवनियाँ
जो एकांत क्षणा में जाने कहाँ कहीं स
चल चल कर इन चिन्तामूल भाँखों के आग
भा कर ठहर ठहर जानी हैं, ये वे मणियाँ
हैं जो कभी नहीं मिलती हैं यहाँ यहाँ स
अनायास, जिसने पाया उसके दिन जागे

8 कल गुलाब जो खिला हुआ था, खेल रहा था
वायु-तरंगों से अपनी छवि में लहराता
और फरहरा अपने रंगों का फहराता
उपवन में, निशब्द हँसी में खेल रहा था
दावपच जीवन के, यो ही खेल रहा था
गजहीनता को सुगंध से, फिर छहराता
अपनी प्रभा व्योम में, नील वण गहराता
और और भी, आसपास में फन रहा था

गति कपो के ताल ताल पर, कहीं गया वह,
आज वत सूना है सूनी है यह क्यारी
जो कल भरी भरी लगती थी, अब काटे का
आच्छादन पड़ने इस गुलाब की टहनी ही रह
गई, वह गई बिन बोले जैम—आभारी
हैं मैं, पाया है मैं न अपन-बाटे का

हृदय हृदय के भाव - बसत से सजो वाले
 प्रिय पापाण, सीढ़ियाँ खड कर पास तुम्हारे
 धापा हूँ मैं, क्या जाने क्यों ! जो बेचारे
 अपना दुखडा ले घाने है, बजने वाले
 घत स्वर म दुहराते है, तजने वाले
 जग मे तुम उनके होत हो अघवा हारे
 मन को मोर मसन देते हो चुप्यी मारे—
 क्या क्या अथ लगाते होग भजने वाले

अपने अपन धाराधन मे घाने धारी
 असफलताभा वा, तुमको तो पता न होगा
 रज मात्र भी , फिर भी तुमको अतर्पामी
 कह कह कर ना जाते होंगे, मान धामी
 भौड भाड मे—क्या क्या कैसे कैसे भोगा
 भाग रह है, दुख निवृत्त करी धागामी

10 जहाँ जहाँ सधान किया जीवन के पथ का
 वहाँ वहाँ देखा, अथ पथ ही पठा हुआ है
 जीवन आगे घना गया हे खडा हुआ है
 हमी तरह इतिहास विश्व का, सबके अथ या
 इति के साथ अथिबधन है, केवल रथ का
 रथी के बिना अथ नहीं है लडा हुआ है
 ससृति का सग्राम सभी का—बडा हुआ है
 जीवन अपन बन से, पीपित अपन गथ का,

अपना का ही सदा रक्षणावेक्षण पा कर
 अपने ही विकास की खरशोता धारा मे
 नहरें लेता हुआ, तरंगो मे उमग से
 आगे बढ़ता हुआ, कभी कुछ पीछे जा कर
 फिर आगे बढ़ता, दिनकर हिमकर - तारा मे
 आत्मपरीक्षण करता प्रतिपद नये ढग से

दुख से दबे हुए मानव, आ आ, मैं ले लू 11
 तेरा सब दुख, तू हल्का हो कर सिर ताने
 आसमान में, इस दुनिया को अपनी माने
 जिसको अपनी नहीं मानता किसको दे लू
 तेरा ईप्सा - द्वेष - अपट - पाखंड—उसे ल
 और डाल दू तुरत महासागर के थान,
 वही पचा सकता है उसको मेरे जाने,
 कोई और नहीं मैं अपनी नैया खे लू

इस दुनिया के महासागरो की तरंग मे
 प्रतिपल आदोलित - हिलोलित होता होता,
 क्या जाने कोई क्षण आए और किनारे
 में जा लगू, अघर पर—चाहे किसी ढग मे
 रहूँ—गान ही होंगे, मेरे स्वर का सोता
 नहीं सूखने का, विधि अपनी सी कर हारे

12 देख रहा हूँ गंगा के उस पार धूल की
 धारा वहती चली जा रही है, चढ चढ कर
 वायु तरंग पर, अपन बल से बढ बढ कर
 धूसर करती हुई क्षितिज को, वक्ष - मूल की
 गोभा हरित सस्य की निखरी, विषम कूल की
 अलिल क्षूयना हरती है छवि से मढ मढ कर
 मानव - आकृतिया निस्वन गति से पढ पढ कर
 जीवन - मथ कहानी देती दूल - फूल की

मैं इस पार नहीं हूँ अल्लिँ उसी पार को
 दौढ दौढ जाती है लहर लहर से हो कर
 तट की सतत वक्र रेखाया का अनुधावन
 करती हुई धूल - धारा को कृपि उभार को,
 पुन क्षितिज की वक्षणीपरेखा को टो कर
 नील व्योम मे करती है अनुभव सभावन

एक समय आता है जब जीवन में स्मृतियाँ, 13
 ही रह जाती हैं, पौरुष क्षुपचाप किनारे
 वही सुटक जाता है, एकाकी मनमारे
 जीवन ताका करता है, पहले की वृत्तियाँ
 छायापथ में मँडलाती हैं, धारक घृत्तियाँ
 कौंध कौंध कर छिप जाती हैं—किसे पुकारे,
 ऐसे में कोई जो आशा धरे उबारे,
 कही डूबते को जिसकी खोई है स्मृतियाँ

एक समय आता है जब स्मृतियाँ भी पथ के
 बिनी किनारे छोड़ व्यक्ति को, क्षितिज बलय के
 सघन वृहसे में रलमिल कर खो जाती हैं
 वभी किसी दिन, मोह त्याग कर जीवन - रथ के
 पाँव पयाद चल देते हैं, पास प्रलय के
 बलाकृष्ट, सजाएँ एक कर शो जाती हैं

14 अपना ही दुख मेरा होता तो क्या होता,
 कैसे हृदय हृदय के बाजे बजने लगते
 उसके अनुघातो ' से कैसे अनुभव जगते
 और और 'लोगो के, कैसे मन का सोता
 फूट फूट कर देश बाल के कूल भिगोता
 चल पड़ता, कस रम की धारा में पगते
 एक हृदय की—जान ब्रूक कर कैसे डगते
 कस पर का अनुभव कोई कथा डोता

पथचारी आँखों के आँसू राह चलते
 मैं क्षुपके से चुन लेता हूँ जैसे माली
 फूल चुना करता है—फूला का उतारना,
 कितना शांत काम है, इसी शांति से बनत
 हैं कठो के हार, भन्व कुछ कुछ जो पा ली
 मैं ने, उस के लिए नयन हैं या निहारना

दुश्चिन्ताओं को थोड़ा विराम मिलता है, भाव नहीं तो फिर अभाव भी इन आँखों को नहीं दीखता अघकार में जो लाखों को दौड़ाता है वह दिन सग सग हिलता है, उसकी गति को देख देख कर ही भिलता है दुख का भार हृदय से जो अपनी साँखों को भार छोड़ कर डुबा चुका है वह पाखा को पा कर भी अपख है कब खुल कर खिलता है

अघकार से मुझे भय नहीं है, क्या भय से रक्षा होगी, रक्षा, किसकी रक्षा, कैसे, चिर यात्री प्राणों को कभी चले जाना है मुक्त माग पर विश्वासों के महदाश्रय से विश्व प्राणमय श्वास ग्रहण करता है, जस रजनीगघा ने अपना वितान ताना है

- 16 स्निग्ध कूट कौशल है जो तुम मुझे दख कर जलभभा में थोड़ा सा मुसका देती हो मेरे ऊपर—क्या विपत्ति में रस लेती हो ऐसा रस दुलभ होता है, इसे लेख कर कौन छोड़ना चाहेगा, जो मीन भेख कर ठहर गए वे मरें, दूसरे—जो खेती हो तो अपनी हो और परायों की रेती हो—इसके विश्वासी हैं, समझा पूछ पेख कर

जीवन का रहस्य ऐसा ही है, जीवन का जीवन के प्रति ऐसा ही व्यवहार उजागर होता आया है समीपता में भी दूरी भ्रूणक मारती है अभिनता में भी मन का भिन्न भाव है कभी स्वगत है, कभी मुखागर—जो है शदातीत कहानी है यह पूरी

उड़ते हैं पारावत जमी हुई बदली के 17
नीचे नीचे लगता है जैसे बादल के
छोटे छोटे टुकड़े खगाकार ये चल के
अपनी चाल दिखाते हैं उस ओर गली के
ऊपर जो आकाश भुका है—भ्रमर कली के
ऊपर का लगता है भरा उजासा छलके
जैसे दिक्-छोरो से कलश गगन वा ढलके—
घन ये धूधट - से लगते हैं किसी भली के

हवा भूमि से आसमान तब आती जाती
है बेरोकटोक, बेलो से उलभ रही है,
पीधो मे परिहास कर रही है, पेढी से
छेडछाड कर रही है, वहाँ पल फुनाती
है बँठी चिडिया के, लेकर गध वही है
खिले खिले फूला के गाँवो से खेडा से

18 जन के हिल जाने पर जैसे तल की छाया
हिनने लगती है वसे ही मेरे मन के
हिल जाने पर मेरा छायापुरुष गगन के
प्रभालोक मे हिलने लगता है समझाया
तुम ने मुझे मम जीवन का—मैं ने पाया
तुम जल हो मैं निहित बिंब हूँ उडते घन के
प्रतिबिंबो पर सुस्थिर, तार हृदय के खनके
साँस साँस से जीवन जग कर आगे आया

छाया छाया छाया छाया—जब भी देखा
केवल छाया दिखी, रूप किस ओर खो गया
अपनी चमक दिखा कर, वहाँ गया वह आत्मा
जिस की सब तलाश करत हैं, जिस की रेखा
नहीं बनी लेकिन सत्ता का शोर हो गया
सारे जग मे, आत्मा ही तो है परमात्मा

जाड़े का दिन धूप खिली है आसमान की नील लता पर, प्राची मे, थोड़ा सा ऊपर सूरज उठ कर चला गया है, नीचे भू पर इधर उधर ज्योति ही ज्योति है स्नान ध्यान की घुन मे लोग घाट पर आते है, बिहान की बेला मे मालिश करते हैं, या ही भ्रू पर बल दे कर रोशनी भेजते हैं, बाजू पर दृष्टि डालते हैं, गुनते हैं बात शान की

प्रिय लगती है बहुत, घमोनी, घाम देख कर लोग कही जमते हैं, गाएँ और बकरियाँ खड़ी धूप मे मौज लिखा करती है सर्दी इसी तरह जाती है घर से मीन मेल कर आती है महिलाएँ, आती हैं सुदरियाँ, 1
कुत्ते करते रहते ; हैं आवागर्दी

20 नाव चल रही है चढान पर, डाँड चलाता चला जा रहा है मल्लाह नाव भारी है, बंटे हैं विदश के यात्री, तयारी है, कई कुतियाँ पडी हुई हैं एक घुमाता है अपना कैमरा—बिनारे ताने छाना धूप बचाती हुई एक ही तो गरी है, स्वस्थ, सलोन, आकषण सब हैं प्यारी है कानी की छवि इन्हें ध्यान भी क्या कुछ घाना

है तट के निवासियो का, उनके मुस-मुस का हा पर कुछ प्रभाव पडता है या य केवल दृश्य देव कर ली अदृश्य होने आत है अपने जीवत की घारा म—मानव मुग का ध्यान कही तक करें अनोखपन का सबसे एनको साता है जिग की मुधि म जाने है

पीछे हरियाली है, हरियाली में पीले 21
 पीले फूलों वाली सरसों सजी सजाई
 लहराती है मधुर गंध से बसी बसाई
 हवा सरसराती है मेरे आगे नीले
 आसमान की छाया गंगा में है नीले
 तट से कुछ हट कर हूँ, आभा जल पर छाई
 रामनगर की बिजली की, खँभिया उत्तराई
 धारा पर जम सोने की, शोभा ढीले

आवाजें दूरियाँ पार कर आसमान की
 कानों को अपना बदनव्य सुना जाती हैं
 अनचाहे भी, धारा पर बल बल ध्वनि करती
 हुई नाव चढती है, अपनी टेक तान की
 गाता है मल्लाह, लहरियाँ बढ आनी हैं,
 जैसे जैसे पुरवाई में लहर उभरती

22 वादल छाए है मूँज भी ढका ढका ही
 अस्तावत की जा पहुँचा जो क्षण भर पहले
 कपोताभ वादन थे उनमें कहीं सुनहले
 कहीं रपहले रग आ गए धावाजाही
 बूँज करते हुए खगो की है मनचाही
 सध्या आज नहीं है कोई कुछ भी कह ले,
 गभीरता धिरी है ऐसे में जी बहले
 कैसे जिसने लाभ के लिए बर ली पाही

उस की क्या स्थिति होगी यदि हानि ही हानि हो
 सार जतन उपाय एक भी काम न आएँ,
 आँसू बहत जायें, अगर बदली छाई है
 तो आभा की चाहे जिननी बड़ी ग्लानि हो,
 शेष प्राणियों में जग कर नवीन काक्षाएँ
 शक्ति जमाएँगी—ऐसी बेला, आई है.

केन विनारे की घटाने, बहती धारा,
दोनों का स्वभाव मुझको समान लगता है—
सरस, कठोर भाव ले कर जीवा जगता है
बाँदा के नागरिक हृदय में, मैंने प्यारा
उसे हर तरह से पाया है उसे सहारा
अगर चाहिए तो अपने का, बर डगता है
अपने अमिषारात्रत से, अंतर पगता है
अपनेपन से जिस पर उसने तन-मन धारा

अस्ताचलगामी किरणों, केन की लहरियाँ,
मिलजुल कर नव गान गा रही थी बल स्वन से
भावी में तल्लीन, उसे सुनने को जैसे
शांत समीर हो गया था, अदृश्य अप्सरियाँ
नृत्यशील थी नीलावर में अपने मन से,
नीलाचल ही दिखता था हम भूले ऐसे

26 सूरज का प्रकाश पड़ता है नए मुखों पर,
झाँसें उन का चित्र उतार लिया करती हैं
अपने आप, बताने में यह सब डरती हैं—
क्या जाने क्या शब्द अर्थ ही, प्राप्त सुखों पर
कोई डीठ गड़ा दे, दुनिया भले दुखों पर
ध्यान न दे पर सुख की ईर्ष्या में मरती है
आठो माम और लबी साँसें भरती है—
मैं न दृश्य यही देखे हैं सभी खूबों पर

नीले आसमान में सब ने सीस उठाए
नही दूब, विशाल पेड़ अथवा पहाड़ हो,
चीटी हो गड़ा हो, साँभर हो या हाथी
या मानव हो कोई भी हो—सभी झुठाए
हुए मरण को हैं मर्दु भाषण हो दहाड़ हो,
सभी चाहते हैं अपने जीवन के साथी

लौट रही है यश, निद्रातुर रमानाथ है, 27
 दीनबधु है, हम तीना ही रात जगे हैं
 यवि-सम्मेलन म—मत्र के सब सट्टज सगे हैं
 बंधे हुए साहित्य-भूष से और हाथ हैं
 जैसे तन में कुछ बँम ही इधर साथ हैं
 स्मृतियों के रिवाज वितन पर अभी लग है,
 बोल तुम्हारे गुनत हैं बेगार, पगे हैं
 मन में पिछने उभयनिष्ठ दिन आत्मगाथ हैं

बाँदा की गलियाँ, सडकें, चीराहे, मानव,
 यश, लताएँ, यशस्वर, वह केन विनारा
 चट्टानों के ढोके और मवानों की छवि
 आँसों के भीतर फिरती है, मन में नय नय
 रग तरग उठात हैं, लहरीली धारा
 पकडे है वह अस्ताचल का प्रनिबिहित रवि

28 कल्पवासिया की वस्ती जगमगा रही है
 वाग लगा है खभो का, खभा के सिर पर
 बिलाली के लटटु के फन चम चम चम चम कर
 चमका रहे हैं कुटीरा को, निघर बही है
 गगा उधर पहुँच जाने को गैल गही है
 स्नानाभिलाषियों ने कुछ नहा चुके सत्वर
 मुडे कुटीरो को, अघरो पर हैं जप के स्वर,
 श्रद्धा की छाती ने हिम की चाट सही है

कुछ कुटीर कुछ छायावृत्तिया ऊपर तारे,
 जहा तहाँ बादल के काले बाले टुकडे
 आसमान में चुपके चुपके तर रहे हैं
 चलती हुई रेल की खिडकी से हम हारे
 हारे नीचे ऊपर देख रहे है, उखडे
 पेड सरीखे ध्वनिधारा के साथ बहे हैं-

जीवन अब तक सूरज, चांद और तारों की
 द्युतिधारा में इधर या उधर बहते बहते
 रोध विरोध चपेट निरंतर सहते सहते
 जैसे तैसे चला जा रहा है,—हारो की
 या जीतो की गणना कौन करे, द्वारो की
 जगह पहाड खडे हैं तन कर, कहते कहते
 कहने वाले गए किंतु ये रहते रहते
 वही के हुए, बात आ बनी अधिकारी की

जल, स्थल, नभ में जीवन जहाँ कहीं होता है,
 अडज, पिडज, स्वेदज, उद्भिज—चाहे जड हो
 चाहे चेतन, चाह स्थावर चाह जगम,
 शाक मास आहार जो करे, वह बोता है
 नए बीज जीवन के, अधकार हो भड हो,
 हिम हो, आधी हो, सब हैं उसको सुख-सगम

30 गह गृह में ग्रह की चर्चा है, अष्टग्रही से
 लोग भयाकुल हैं सडका पर, चौराही पर,
 नाका पर अडडो पर भीतर की आहा पर
 काबू रख कर बतियात हैं, ऐस जो से
 जमा हुआ भय बाहर करते हैं, साथी से
 कहते हैं—तुमन भी सोचा है ? साहा पर
 रको पर भय झलक रहा है, उत्साहो पर
 सक्ट छाया है जो उगा, बढा धरती से

भूमडल भर के भविष्यव्यवसायी दल न
 जल स्थल-नभ से महाप्रलय होगा—भासा है
 प्राणी अधप्राण हो गए हैं दस कल की
 चिंता उनको अकमप्यता से कर मलन
 पर ही विवश कर रही है, जिस न राखा है
 - वह क्या कल न रखेगा, ऐसी चिंता छलकी

सध्या वैसे ही मुसका कर बिदा हुई है
 जैसे बल, परसो या नरसो, यह मुसकाना
 भोलेपन का खिला फूल है जो कुम्हलाना
 नहीं जानता है सशय से, बिधर हुई है
 यहाँ बन्नता की रेखा, दूर ही हुई है
 इस से इस के जीवन से, जो ताना बाना
 यहाँ बंधा है वह सब का जाना पहचाना
 है जिस पर जीवन की दुलभ सुधा चुई है

31

इस सध्या की छाया में जो रात आयी
 वह सध्या से बिलकुल भिन्न बदापि न होगी,
 यहाँ छल नहीं—भोना मुख छल को बया जाने
 इमी सहेली से तो सारी बात पायगी
 रथ के पथ के, कैसा राजा कसा जोगी
 मन विश्वासघनी है—घय कौन धन माने

32 हवा रोशनी सूरज की, आकाश खुला है
 कही बादलो का निशान भी नहीं सुना है
 भरसक सब की आँख बचा कर अभी चुना है
 स्वेटर तुमने मेरे लिए अनत धुला है
 सूरज के पानी से — पावन रूप तुला है
 आँखों के निल में मैंने दिनरात गुना है—
 कौन कौन गुण घय हुए हैं जिन्हें चुना है
 तुमने अपन लिए, महक से रूप धुला है

मैं इन आँखों के सुनील जल में खो जाऊँ,
 जो बरता है, कोई बूँद मुझे न पाए,
 मेरा होना ही सुगंध बन कर दिग्गत में
 जल के ऊपर खिले कज्र सा हो वो जाऊँ
 मैं भी सूक्ष्म तरंगें ऐसी ही, उपजाए
 प्यार तुम्हारा प्यार, प्यार रह जाए अत म

कृष्ण वण मेघो से आच्छादित दिन धाया 33
 जैसे जैसे गया उपा को मुसकाने का
 समय ही नहीं मिला, महावर रचवाने का
 काम रह गया और क्षितिज-मडल संबलाया
 इतना जितने धन थे आखी ने यह पाया
 सध्या आई और कही भी अपनाने का
 भाव न पा कर लौट गई जी उफनाने का
 कारण अतनिहित प्यार है, आश्रय काया

काया है आधार जगत् के सबधा का,
 सबधो का प्रेरक मन है मन को स्मृतिया
 क्षण क्षण सिगारती है यही सिगार रूप की
 नई नई रचना करता है, सद्गधो का
 सत्कुसुमो से भाव बंधा है, अच्युती कृतिया
 चाहक हैं कर्ता के पथ की क्लाति-धूप की

34 वही धूप जो मेरे हाथो को बालो का
 छू छू कर इतनी गरमाई ला देती है
 जितनी मुझे चाहिए—सूरज की खेती है
 लहराती है, चल कर पेड़ो की डालो को
 हवा सँभाल नहीं पाती अपनी चालो को
 भूम भूम कर उछल उछल कर कर लेती है
 अपना तिरस्कार अपने से, फिर सेती है
 अस्वीकृत एकांत, छोड़ हँसने बालो का

वही धूप पेड़ो के पत्तो की हरियाली
 ओप रही है, कितने रंग निखार रही है
 रंग रंग के फूलो में, उडती चिडिया के
 रोएँ, डंने चमकाती है जो खुगहाली
 चौपायो में है उठ कर ललकार रही है
 सुस्ती को, जब तब, दिख गए पवन के भाव

वभी कभी लगता है कोई अर्थ नहीं है 35
 इस जीवन का, यदि कुछ है तो मार-काट है,
 हत्या और आत्महत्या है, लूटपाट है,
 बलात्कार है जग में कौन अर्थ नहीं है,
 निराकरण में कोई वही समय नहीं है,
 दूढ़ दूढ़ कर हार गया हूँ हाट-बाट है
 जहाँ उचककों की बनी है, कौन घाट है
 अच्छे जल का—खोज किसी की व्यर्थ नहीं है

मानवता के महान विपिन में भटक गया मैं—
 जितने नर, जितनी नारियाँ—मैंने के अपने
 अपने सपने—अपन अपन पथ या साथी
 मिले—देर से समझा इस को नया नया मैं—
 बच्चा ही था आखिर—मुझे पकाया तप ने—
 दिया जान वह जिम की मुझ को अभिनाया थी

36 अभी अभी जो चला गया उस ओर—उधर—वह—
 वही आदमी जो लंबे लंबे डग भरता
 चला जा रहा है विलंब होने से डरता
 सा है उम के भरे बदन पर जितना भी रह
 पाता है आत्मीय भाव आँसो से साग्रह
 उतना ही बरसा करता है पथ तय करता
 जाता है वह जैसे जैसे जीता मरता
 दुःखिधा में भी बाजे बजते रह गहाग्रह

जाने हुए शब्द भी मैं प्राय चुनता हूँ
 अपने अतगत अर्थों में, अभिप्रत ध्वनि
 घर्ण-तरंगा में लहराती है, कानों की
 सबदना विदित है मुख का पर सुनता हूँ
 असबद्ध उत्तर, कैंसी हो गई है अवनि,
 नया भाषा को चाह नहीं है सध्यानों की

हरितकृष्ण पत्रों के कपित पुट पर रख कर अपनी मजरियो की अजलि सहकारो ने तुम्ह समपित की आम्यतर सस्वारो ने प्रभामडलित तुम्ह रोदसी मे स्थित लय कर कडवे, मीठे, तिकन, कसैले सब रस चख कर तुम को सीस नवाया वीणा के तारो ने और बदन पर लिखित दगो के उपहारो न बज कर बजा दिया मुझ को भी निरख परख कर

37

उधर सावली सरसो आज बसती धारे भूम रही है लहराया है वय का भूला और निखार आ गया है, कोयल ने आ कर तुम्हें पुकारा ह, अब किस को और पुकार, नील गगन क्या तीसी की पुनगी पर फूला, भाव रूप हैं रूप भाव हैं—क्या कुछ पा कर

38 धूल धरा से कितनी बार उठी चरणो से कौन कहेगा? उठ कर धूल बठ जाती है और चरण वे अब तक जिनकी गति गाती है दश - काल की मर्यादा में याचरणो से छिनभिन्न कर दिए गए हैं सचरणो से समुपलब्धि क्या हुई—बात मन मे आती है—जिजीविषा उपकरण कहीं से क्या लाती है, इस का समाधान समभव है आचरणो से

जिस को हम इतिहास कहा करते हैं माटी, हड्डी, पत्थर, लोहा, ताँबा, पीतल, सोना, चाँदी, कौडी, मूगा, दाख छोड कर क्या है जहाँ कहीं भी जिस भी जीवन परिपाटी प्रकट हुई है, उसका कुछ वैसा ही होना

ध्रुव है जो प्रदीपित है जो प्रदीपित है जो प्रदीपित है

गाते हुए गले में कितने दिन गाएँगे, 39
 कितने दिन हम सुन पाएँगे, पर यह गाना
 अक्षर रूपों में जीवन के पथ पर नाना
 स्वर उठायगा—सुन सुन कर मन लहराएँगे,
 कर्मपाश में बँधे हुए भी जो आएँगे
 स्वर की डोरों से खिंच खिंच कर उन का माना
 अंतर को हलसाएगा, हुलास से जाना
 पथ सँवार देगा, मानद नया पाएँगे

रूप गीत के हम साखी हैं वैसे जैसे
 पवन मडलाकार कृष्णघननील उमड़ते
 हुए मसण आषाढी मेघा, का साखी है
 उन का गजन, वपग आवतन अब कैसे
 कैसे रूप लिया करता है, घटा धुमड़ते
 केही ही देखा करता है जो पाखी है

40 शब्दकार, इन शब्दों में जीवन होता है
 ये भी चलते फिरते और बात करते हैं,
 तोप, रोप—जब जैसे भावों से भरते हैं
 तब वस ही अर्थों का व्यजन होना है
 समस्त शब्द अर्थ से अनुरजन होता है
 साक्षर शक्त लिखित ध्वनि लहरा पर तरत हैं
 अपनी आँखा में स्वीकृत प्रकाश भरते हैं,
 जान अनजाने भय का मजन होता है

शब्दा में भी हाड, मांस है जीवन घर कर
 वे भी जीवधारियों के स्वरयंत्र सँभाले
 स्फुट, अस्फुट दो धाराओं में प्रवहमान हैं
 रात और दिन—आवापृथिवी में विचरण कर
 भलकाते हैं दुनिया के सब खेल निराले
 और मनोहर बाल-स्रोत के सनिधान हैं

यह क्या लीला की कैंसा भालोक दिखाया—
 तपा तपा कर जीवा को अविराम उठाया,
 मेघो की माला रच दी, स्वाधीन कर दिया
 नील गगन में पहुँचा कर रगीन कर दिया—
 भ्रान्तित हो गया विहग, पथ्वी पर छाया
 छोड़ चला, नवीन में उसे नवीन बनाया
 प्राचीनो में ल जा कर प्राचीन कर दिया

स्वर के बाहर में क्या हूँ, कुछ नहीं कुछ नहीं,
 कुछ की खोज किया करता हूँ कुछ पाता हूँ,
 जो कुछ पाता हूँ, वह कुछ भी खो जाता है,
 यह सब क्या है—भ्राज कही है और कल कही,
 वह सुदरता क्या है जिसको मैं गाता हूँ—
 भ्राँवो से क्यों मन का विनिमय हो जाता है

42 मरकत मणि के ढक्कन में हम डके हुए हैं
 सूरज, चाँद, मेघ, तारो की तरह और भी
 भ्राते हैं, जाते हैं—हिर पर कितु मोर भी
 रखे रखाए चलते हैं पर यके हुए हैं,
 ताप कठिनतम खाते खाते पके हुए हैं
 फिर भी अभी और पकना है नए तौर भी
 अभी सीखने हैं, जीन के लिए कौर भी
 हाथो में लेना है, मधु ती छवे हुए हैं

नदी, पहाड नगर, वन भीन, सिंधु सत्र इसमें
 पडे हुए हैं, ये जलयान, विमान बराबर
 रेलगाडियो सहित इसी में नाच रहे हैं,
 इस चुनौती दे कर लखे इतना किस में
 धावम है, कौतुकी उपग्रह इधर सरासर
 महाकाग में पहुच सवेग कुलाच रहे हैं

बुछ आँखो से ज्योति निकलती है बुछ एसी
 जो प्रभात रवि स जब तय निकला करती है,
 ठहरे जीवन पर चचल तहरे भरती ह,
 गति ही गति अक्षित होन लगती है वैसी
 जैसी पहले कभी नही थी, वैसी कसी
 मन की धारा होने लगती है, धरती है
 वह अचला हो जाती है, ऐम हरती है
 चचल मन की, नर जसा है नारी तैसी

विषमशिलासकुला पवतोद्भूता गगा
 शशितारकहारा अभिद्रुता अतिशय पूता
 निविधनिनादविहाररता कृपिप्लानुकूला
 जिसकी हिमवत से जलनिधि तक धार अमगा
 दिखलाई दती है उस को किस ने कूता
 कौन फूल उस के जल स भारत का फूला

44 आहत शब्दो से तरा गचन करने की
 में करता हूँ अगर् डिठाई मा, तो इस मे
 तेरा प्रोत्साहन है और नही तो किस मे
 इतना बल है जल स अपना घट भरने की
 जुगत चाहिए, इस के बिना तपा हरने की
 कोई आशा नही—और आशा भी, जिस मे
 कर बल है उस म रहती है वह जिस तिस मे
 नही रहा करती है, नौका है तरन की

कसे और कहीं स शब्द अनाहन पाऊँ,
 मुझ आहत पर तू ने कृपा दष्टि डाली है
 यह सामान्य नही है, तरे मन म चाहत
 नही अनाहन के प्रति माँ—मैं भर भर लाऊ
 आँखो म जल मेरे पाम कहीं थाली है
 तुम्हको नहलाऊँ, माण जी को बुछ राहत

शब्द शब्द से व्यजित जीवन की तलाश में
 पवि भटका करता है, उस की यह आवृत्तता
 समझ भी नहीं समझ सकी वह कौन अतुलता
 है जो द्वासो के प्रवाह को मोह-पाश में
 बांधे हुए घरिणी या इस महाकाश में
 कहीं स्थिर नहीं रहन देनी कुछ तो खुलता
 जो रस्य है औरों से भी मिनताजुलता
 कुछ तो होता रात और दिन के प्रकाश में

यह भी कोई तुक है—कहीं फूल मुरझाया
 और आप की आँखें भर आईं, थोड़ा सा
 रक्त वहीं बह गया, आप बेचैन हो गए
 कोई पूछे—घाँसू गिरा गिरा कर पाया
 क्या आप न, बिना कुछ भी दम और दिलासा
 की किसी की, क्या दुनिया के ताप खी गए

46 मैंने जीवन की शराब पी, बार बार पी
 जब जब होश हुआ तब तब ले ले कर प्याला
 ओठों तक पहुँचाया अतस्तल में ढाला
 उस रस को जिस की सचित सोद्वेग चाह थी
 सिरा सिरा में जागा, जग कर एक आह की—
 देखा, मुझ को ला कर किस दुनिया में डाला
 उम ने, जहाँ भले स्वप्नों तक का तो ढाला
 रहता है, खीझा, फिर अपनी गई राह ली

मैं इस जीवन की शराब को पीते पीते
 वर्षों का पथ क्षण की छोटी सी सीमा में
 तय करता चुपचाप आ रहा हूँ अनजाने
 और अपरिचित चेहरे अपने जैसे जीते
 जीण शीण मिलते हैं, मैं उन का कर धामे
 देता हूँ जीवन, जीवन के मधुमय गाने

इतने पर भी माघो के प्रति मेरे मन में वही भाव है जो पहले था, बना रहेगा, यद्यपि मेरे देश का रुधिर अभी बहना हिमशृंगो पर—और देश के पूरे तटों में और तनाव बढ़ेगा, और रोप जन जन में सुलगेगा, अत्याचारों का वेग बहगा प्रतीकार के लिए, राष्ट्र का तेज सहेगा आखिर कितना, दर्प जगेगा सब के प्रण में

माघो, तुम जननायक हो, तुम ने जनता का जीवन जीने योग्य किया है, चीन जाग कर अपने पैरों आज खड़ा है—पर भारत का दोष वहाँ है, अपनी सीमा की रक्षा का कार्य उसे करना है सारा मोह त्याग कर, स्वाभिमान ही सार तत्व है मानव - मत का

48 गए मुभापचंद्र वसु, रहने को आया है वहाँ यहाँ जो आता है उस को जाना है इस दुनिया को जो सरायफानी माना है सब ने, यो ही नहीं, सत्य को भूलनाया है सदा असत् ने अपनी बलि से, छलकाया है जैसे अघजल घट में जल को पछताना है उन के लिए जिन्होंने धरण धरण छाना है और जगज्जीवन का, नया तेज पाया है कहीं स्वाध के अदर सब का अथ समाए तो सुभाप की भलक सामने आ जाएगी उसी समय प्राणों का माह नहीं यदि रोके तो कोई अपना सिर दे कर सार बनाए— फिर भी कुछ समता सुभाप से आ पाएगा कैसे वह, मरे बाहर भारत के होव

गाधी मारे गए, न मारे जाते तो भी 49
 मरने यहाँ सत्य यदि है तो नाम राम का
 और किसी की शवयात्रा में यही काम का
 घोष रहा है गाधी के प्राणा का लोभी
 असंतुलित था, हिंदूवादी चाहे जो भी
 कहा करें गतिशील आदमी कभी काम का
 थैला नहीं बोलने वाला जिसे काम का
 कोष कह सकें, ऐसा जन यदि कोई हो भी
 तो भी वह भी चाहक होगा भले नाम का

गाधी थे आदमी आदमी वे कैसे थे
 जैसे अधिक नहीं होते हैं जो रोते हैं
 उन के लिए आदमी वे भी हैं पर कैसे
 जैसे लाखों लाख मिलेंगे, वे ऐसे थे,
 वे वैसे थे, बढ़ते हुए, समय खोते हैं
 धपना और दूसरो का, विधवाओं जैसे

50 यदि इच्छा है हिंदी की विदी हाने की
 तो इस नास्तिक युग में विश्वनाथ की सेवा
 एकमात्र साधन है इसे छोड़ कर सेवा
 नहीं पार जान का चिंता तज साने की
 वण वण से वर्णित बीजमंत्र धोने की
 विश्वनाथ ने स्वयं साधना की हैं देवा
 राधन अक्षर - ब्रह्म का किया, अपनी जैवा
 काक्षा तप से साधी, मानसमल धोन की

चेष्टा सतत तप से की, तप से विद्या को
 अनवद्यागी किया, कम से घट जीवन को
 बसते गए बसौटी बचन को कसती हैं
 जैसे वैसे ही, अपनी रचना हृद्या को
 बसा दिया आखा से मन में, मन से मन को
 मोह लिया जैसे मन में शोभा बसती है

हम जिस घर में पड़े हुए हैं उसमें खिड़की 51
 एक नहीं है, जिस से हवा रोशनी आए
 बाहर की, सधो से हो कर छाया छाए
 दीवारों पर, अपनी उम्रुखता में छिड़की
 हुई प्रकाश तरंगों से आपस की भिड़की,
 खोज, घुटन, दूरी है इस में कोई पाए
 कसे पथ विकास का—आन को आ जाए,
 भय ही भय देखे जैसे उड़ जाए पिड़की

यहां बाप दादा को नहीं हमें रहना है
 हम को अपनी आंखा देखरेख करनी है
 अपनी अपनों की धब तो इतिहास पुराना
 सग्रहालयों की शोभा है सच कहना है
 इस जीवन का घर की नई नींव घरनी है,
 धारण करना है, नवीन मानव का बाना

52 तुम मुझ से नाराज हो गए अभी कहा क्या
 मैं ने तुम से अच्छा भाई, दाढ़ी चोटी
 जो जो चाहो रख लो गम गम वह रोटी
 जो मुह में जीवन बनती है, भई रहा क्या
 अंतर उस में, इस अभेद को नहीं सहा क्या
 तुम न ऐसी ही कितनी ही छोटी छोटी
 बातें तुम्हें एक करती हैं अपनी गोटी
 देख रहे हो इस धारा में नहीं बहा क्या

नाक दबी हो या उभरी हो, माथा नीचा
 हो या ऊँचा, कोई लंबा हो या बीना
 आँखें तिरछी हा या पत्नी हा रंगों में
 काला पीला, लाल श्वेत जिस से भी सीचा
 हो गरीब को—दुनिया में मानव का छीना
 कोई भाषा बोले अलग नहीं मग म-

धूम बहुत पहले जब आई तो पीपल की 53
 फुनगी पर आई, टूसे से टहनी टहनी
 उमुख थी, ललछू पीली आभा ने पहनी
 नई सुनहली अँगिया हवा चली तो छलकी
 छिपी हुई छवि, वर्षों की महिमा इस पल की
 सीमा भ आ गई, धार धरती पर बहनी
 धुरु हुई—पीपल की हार हुई अनकहनी,
 उतर गई देदीप्यमानता, सब पर भलकी

मैं ने समझा था, यह पीपल जटाजूट में
 आज व्योम ज्योतिगंगा को शिरसा ले कर
 खडा रहेगा—लेकिन ज्योति उतर आई है
 हरित तृणों को हुलसाती है और लूट में
 लेती है शैथिल्य विश्व का, अजन दे कर
 नई ज्योति का नेत्रोमीलन कर आई है

54 मटाकाश का कनक सुनील पारदर्शी है
 उसमें अपनी पथ्वी स्थित है, घूम रही है,
 एक ओर तो प्रखर ज्योति की धार बही है
 मूरज की, दूसरी ओर तम सुस्पर्शी है
 अस्थिति में स्थिति—जीवन स्वयं रोमहर्षी है,
 मरण दौड़ में पिछड़ गया है किंतु सही है
 जीवन ने जो व्यथा किसी में कहा कही है,
 कौन कह गया यही व्यथा ही मधुवर्षी है

घट के भीतर घट हैं घट य चाक पर चढ़े
 घूम रहे हैं कभी संवरत, कभी बिगड़ते,
 और चाक यह, अहोरात्र चलता जाता है
 कैसे कैसे वहाँ कहीं जब से उठे बड़े
 रग रूप जीवन के इस को लडते लडते
 बतमान भी देख देख कर दिखलाता है

उड़न वाले पक्षी को तो डाल मिल गई 55
 हरे भरे फल वाले तरु की, मुझे क्या मिला —
 पृथ्वी पर चलता हूँ तो आकाश से गिला
 करता हूँ धक जान पर वह क्ली खिल गई
 शामद मेरी दशा देख कर और हिल गई
 नई सहानुभूति से भर कर मगर सिलखिला
 उठी, खिलखिलाहट का चलता रहा सिलसिला,
 कहूँ कहूँ जब तक कुछ तब तक जीभ किल गई

कौन शिकायत करे, शिकायत स क्या होगा,
 कौन सुनेगा, बहुचर्चित करुणा के सागर
 कान भर दिए गए—और मन भाग रहा है
 औरो के आगे मैंने क्या कितना भोगा
 जीवन के क्षण मे रीती ही अच्छी गगर
 शिलासधि मे वह दूर्वाकुर जाग रहा है

56 उकठे हुए पेड़ पर मैं ने दीठ गडाई—
 मन मे हरियाली के जीवित चित्र भा गए,
 कितने दूरागत खग आए खे, गा गए
 अपने अपने गान, मान की मोन कडाई
 पहले कही कहीं थी, भा कर तित्य लडाई
 सुखाभिलाषी करते थे, प्रति दिन बहा गए
 सूय-चंद्र ज्योतिषाराएँ, शरण पा गए
 जो छाया मे आए, गत हो गई बडाई

आकाशीमुख निवल्कल सारी गाखाएँ
 और प्राखाएँ फिर भी विमलित बनी हैं
 भव भी इन मे क्या कोई प्रायना दोष है
 पृथ्वी के इस कोन मे अतीत भापाएँ
 हाहाकार कर रही हैं नायास सनी हैं
 जिजीविषाएँ—कहाँ बाल है कहीं देग है

हम ने अपनी ज़रूरतों को जान लिया है
 और जान कर उसी जगह हम नहीं टिके हैं,
 बाजारों में यहाँ बिके हैं वहाँ बिके हैं
 चीजों की कीमत है, अब यह मान लिया है
 और उसे पाना है, जो मैं ठान लिया है
 अगर ज़रूरत नहीं रत्न भी यहाँ बिके हैं
 इधर उधर की आँखों को बेकार दिखे हैं
 अर्थों का वितान हम ने भी तान लिया है

जीवन में अजनब का मतलब पैसा ही है,
 पैसा ही जीवन के स्तर का मानदंड है
 इसी लिए आराम हराम कहा जाता है,
 फूलों का बेला या होना ऐसा ही है
 जैसा सुक और मगन का नभोबड है
 चिड़ियों में सुक पिंजरे में है ही, गाता है

58 शब्दों में उन अर्थों को मैं कैसे लाऊँ
 जो आमों की टहनी टहनी में फल बन कर
 भूल रहे हैं जंगल में देखा है तन कर
 सिंह किस तरह चलता है, किस विधि से पाऊँ
 घरती का-सा धँस दूँगे में व्योम बसाऊँ,
 फिर यह छवि उरेहता जाऊँ मन से छन कर
 रूप और से और बनेंगे तन मन घन कर
 कैसे उस को मृत बनाऊँ और सजाऊँ

मुझ को जीवन की मुद्राएँ घेर रही हैं
 जल स्थल नभ में प्राणों की अगणित धाराएँ
 प्रवहमान हैं—प्रकृति और मानव वृत्ति मिल कर
 रूप जगत का अपनी आँखा हेर रही है
 सृष्टि - पदों की साक्षी हैं नभ की ताराएँ,
 अथ और भी सुलते हैं भावों में खिल कर

चाँद कहीं है और चाँदनी धरणीतल पर
छाई है, कुछ अघकार है कुछ प्रकाश है,
एक अजब-सा धुधलापन है, प्रतीकाश है
यह परिचय, या जो जीवन की प्रति हलचल पर
अभित हो उठता है, मपनों के बरा पर
और और बढ़ता है ऐसा मोहपाश है
मवधा का सुंदर बस महाकाग है
बसा हुआ मजरियो द्वारा पवन-पटल पर

और ग्राम का पड कहीं होगा तो होगा,
सौरभ की सहारा न अपना जाल चुन दिया
चारा और, और मजरिया धूप-दीप-सी
अतहसित गगन-उमुप हैं इन को भोगा
है बसत के रामप्राण न जिह चुन दिया
बसुधरा न मर्यादा द कर महीप सी

60 जहाँ कहीं भी देखा मैंने हरियाली को,
मडल म ही उसे पनपते बढत पाया
और खमडल मे उमुसत चढत पाया
रात रात भर सदा अघेरी उजयाली को
उस के वण-गध मे पाया मधु-प्याली को
पुष्पा के कितने वणों से मढते पाया,
रोलवो को कुज बुज मे पढते पाया
उस का बिरु पाठ, श्री पर भलकी लाली को

नभ का नील वण हरियाली को छा छा कर
और और से और और की और निराली
श्री अर्पित करता है जैसे प्यार हृदय को
नए नए भावोदय के गायन गा गा कर
दश देग मे कुछ विशेष दिखला कर काली
रातो को उज्ज्वल करता है सहज समय की

विताग्री के ऊपर आ कर जब भी जग की मैं निहारता हूँ तो इस को नदन वन से किसी अश म यूँ नहीं पाता हूँ मन से मनन किया करता हूँ—मानव अपन डग को कुछ सँभाल कर रखता तो इस कुसुमित मग को विवृत न करता, सुदर प्राणभर जीवन से जो अविरुद्ध शक्ति पैदा होती वह जन से जन का हृदय एक करती गति द कर पग को

यह सब तो सपना है आखी का अपना है सूर्योदय सूर्यास्त और दिन, दिन के देखे वण, रूप, मुद्राएँ, ध्वनियाँ — जो भी जान अनजाने हैं उन सब का जी कर तपना है, आह सभी की साँसा में है मेरे लेखे सुखी वही हागे तो होंगे अनपहचाने

- 62 सुदर आँखें, विलुलित बणी और चलावा—
आगे ही देखते हुए, अपनी ही धुन में बढ़ते जाना, आवश्यक होने पर उन में मुड कर बगल देखने की रुचि पथ की आवा जाही में मरजाद बचाना और दिखावा भी निवाहता देख परख कर, अपने गुन में और निखरना, इस धरती पर बरसे हुन में वारहवानी को देना दिनरात बढावा

यह भारत की क यात्रा का कठिन काम है जिस की ओर लगे हैं नर-नारी के लोचन इस काटे पर तुलना कितनी बड़ी बात हो अगर वही हो जाय सचाई एक नाम है जिस का अर्थ लो गमा है सशय का मोचन कौन करे, जब डाल डाल हो पात पात हो

शब्दों के द्वारा जीवित ग्रथों की धारा में आज बहा दी है जिस के दो तट हैं एक भाव का एक रूप का निबट निकट है चाह दूर दूर दिखत हा जो भी हारा-धका यहाँ पहुँचेगा वह तन मन म यारा तज भोज पाएगा, लक्षण सभी प्रकट हैं हुलसी हरियाली से उपचित हैं, उदभट हैं— वचन प्राण का परितोषण करते हैं सारा

शब्दा से ही वण गध का काम लिया है मैं न शब्दा को असहाय नहीं पाया है अभी किसी क्षण पदचिह्ना को देखा ताका मुझे देख कर सब न मेर, नाम लिया ह बता दिया, क्या वस्तु सत्य है, क्या माया है क्या है वप का चड दिवस, क्या है मधुराका

64 किस के हैं ये पाँव, धूल पर साक छपे हैं पूरे पूरे इहे हवा ने नहीं उधेडा, अभी धूल बेठी है वरना जरा बखेडा हुआ, वहाँ वह धूल कणों की नाप नपे हैं ये जीवन के बाहक, अच्छी तरह तपे हैं तपी भूमि से और चाह न इह उधेडा, पोली पोली दौड़ाया, हर ओर पछेडा खेप खेप पर साँसा घासा लिए खपे हैं

मिट्टी के इन चित्रों को किम ने देखा है, किस ने इनके मर्मों को समझा-बुझा है किस ने इन साँसा की व्याकुलता जानी है अभी अनुरित लक्षित एक एक रसा है, जीवन को इस गति की यह किस को सूझा है छवि जगती में नश्वरता की पहचानी है

कल प्रस्तावतलगामी रवि - कर की सारगी
 मैंने या ही वे ती, धुन म लगा बजाने
 सग सग सवादी स्वयं मे अपने गाणे
 चिडिया ने गाए, पत्ता ने रगविरगी
 नृत्यकला दिखलाई सारा विश्व तरंगी
 बना तरंग के कपन मे, अनपहचान
 बधु और आत्मीय बन गए, जाने - मान
 प्राणाधिक हो गए—इस तरह जावन सगी

65

सायकालिक सगायन मे फूल चढाए
 पल्लविनी सतिकाओ ने, पडो न हिल कर
 भाव बताए और पवन ने बहते बहते
 साग्रह कहा कि मधु ऋतु जब दरवाजे आए
 तब ऐसे ही स्वागत करो हृदय से, खिल कर
 मौन विराजे मुख पर, मन की कहते बहते

66

जब जब बाहर से आया तब तब मेरा घर
 अपने अपनेपन से अधिकाधिक अपनाता
 मुझे मिला आवाजा से ही जान बचाता
 किसी तरह घर आता हूँ, इस मे अपने म्वर
 सुनता हूँ सुनता हूँ, बार बार भी सुन कर
 तपित नहीं पाता अपने मन को समझाता
 हूँ, जीवन भी बदी स्वर है स्वर का नाता
 कहाँ छोड़ पाता है जीवन, जग मे जग कर

मिटती बनती रेखाओं से, उस कोने मे
 मैंने कई चित्र सिरजे हैं जिन को मेरी
 भाखें खोज लिया करती हूँ, तुम्ह लगेगा
 यह मेरे मन को उडान है पर होन म
 जितना मैं हूँ उतना ही वह भी है हरी
 हुई सिद्धि पाते ही पाते ही जीवन - योग जगगा

किनने डर हैं हम कितना कम बोल रहे हैं,
 कितना कम मिलते हैं, कितना कम सुनते हैं,
 कितना गम खाते हैं, कितना कम गुनते हैं,
 हम अपना रहस्य कितना कम खोल रहे हैं
 कहा कहा होना था पर हम गोल रह रहे
 होना की मर्यादा से हम सिर धुनत हैं
 जब कुछ कभी गुजर जाता है, फिर चुनते हैं
 चिताग्री की भाव चढा कर तोल रहे हैं

भीड़ भाड़ में इस का कब विचार करते हैं,
 य जो भाव पूछ कर अभी बढ गए आगे,
 ये कुछ यो ही भाव पूछने आ जाते हैं,
 इन्हें कुछ नहीं लेना देना आ भरते हैं,
 घर भी रहते तो क्या करते, घर के त्याग
 वितामुक्ति माग पर विध्वरी पा जात हैं

68 डर लगता है जीवन में उन से जा अपने
 होते हैं अपनपन का नापन करत हैं
 भावों और अभवों का मापन करत है
 तुलना द्वारा और अनजित दुग के सपने
 मुन्वरेसा से जान लिया करत हैं, छपा
 से पहले ही उस का विनापन करत हैं
 अननादा होन जैसा तापन करत हैं
 अनस्तल का, जसा किया न होगा ताप न

तप विपष्ट देता है कमलों को मुग्धता,
 देता है समीर को जल को हिमा हिता कर
 उम क बहलाने का उद्यम करत निष्पन्न
 दसा है आशा-गीतिमा को छा जात
 उम क ऊपर, धातुरता में तिमा तिमा कर
 देता है रवि की किरणों को जल पर बंधन

श्रीर विश्व का यह जीवन भी बड़ा मिलेगा,
 दुःख अभाव अघसाद सभी हैं तो होने दो
 अरुण सूर्य का आ आ कर प्रकाश बोन दो,
 धनी न रुभी नहर के ऊपर पमल तिनैगा,
 चिर यानी समीर भी उस । आप हिसगा,
 दिन जाने दो सहीचा को कुछ खोने दा,
 दिन आप दो बोलेगा, उतना रोने दो
 जितना रो सयता है तब तो भार मिलेगा

69

भावा के भी पार प्राण नहरें लेता है,
 उगता है, यदना है श्रीर पल्लवित हो कर
 अपने पाव सडा होता है, इस के द्वारा
 श्रीर श्रीर भी उठते हैं प्रति क्षण दना है
 नया बोध अस्तिरव — अहता सारी खो कर,
 जिस की बूद बूद स वह निकली थी धारा

70

जीवन यात्रा है यात्राओं की असगता
 श्रीर सगता इस म साथ साथ चलती हैं—
 यह खलती है तो उननी ही वह खलती है
 इस असग मन को अघसानो की असगता
 श्रीर अभिलपित, अगा की केवल निरगता
 रातों के ही अथकार-गड म पलती है,
 मैं न जान लिया है यह मेरी गलती है
 यदि मैं चाहू सगा से चुन कर सुसगता

फून श्रीर काँठो को किस न अलगाया है,
 दोनी कुछ आगे पीछे ढालो पर आए,
 दोना ने ही कामलता से आँख मडाई,
 एक कठोर भाव पर निभर हो आया है
 श्रीर दूसरा कोमलता से आँख मिलाए
 चलता है कठोर घरती पर मेल कडाई

जुबली

70

कोरिल का कूजन सुन कर सहकार ने कहा —
 अग्रदूत, आण वसत तो मुझे यताना,
 ऐसा न हो कि आ कर निकल जाय अनजाना
 बोला पचमगायक—आया और आ रहा
 है वह भू पर, अपने जी म प्रश्न भी सहा
 तो तुमने क्या, मजरियो का ताना बाना
 तुम घर लोके सय मे पहले, फिर बतलाना,
 है कोई जो उस के वेगो म नहीं बहा

71

गधोमाद तुम्हारा औरों को व्याकुल कर
 इधर उधर भटकाएगा, तुम बिले रहोगे
 अपन परिवर्लित विकास मे मीनकेतु के
 अधिज्येशर से अपने सबलों को खुल कर
 कभी किसी से किसी समय भी नहीं कहोगे
 प्राणवायु मे रहे रहोगे रम्य सेतु - स

72 नए नए रूपों की नई नई रेखाएँ
 स्मृति के सरक्षण गह मे सयत्न सचित कर
 आगे चरण बढाए हैं जीवन के पथ पर
 मैं ने, क्या जाने अगले दिन क्या क्या लाएँ
 क्या क्या अपने सहस करा से दे दे जाएँ,
 उत्सुकता है अतर में अभिलाषो के स्वर
 रँग रहे हैं और प्रतीक्षा के पखो पर
 मन उडता है, विस्मय कर सपूण कलाएँ

जगती की अनतता से मन क्यों थकता है—
 क्या यह सत्य नहीं है, मन की अनतता से
 अनतता भी हार मान कर रुक जाती है
 सिंधु विंदु मे समाविष्ट क्या हो सकता है,
 क्या उस की स्थिति दिक्बालो का सततता से
 परिच्छिन्न हो कर वसे ही भुक जाती है

चोरिल का कूजा मुा रर
 अग्रदूत, प्राण यस्तत ता
 एमा न हा हि प्रा पर ि
 बोला पत्रमगावन—प्रा
 है यह नू पर, अवा
 तो तुमा यया, ग
 तुम घर लोग सब ा
 है वाद जो उत व

गधोमाद तुम्हारा
 इधर उधर नटनाए
 अपन पखिल्लित
 अधिज्यवर से अप
 कभी किमी स ि
 प्राणवायु म रर

और लोग क्या बात कहगे किसी बात पर,
 वहन दो कहनाव कभी क्या कही रका है,
 इसी तरह उद्वेग आप से आप चुका है
 शब्द शप से हाथ मिला कर किसी बात पर
 जाते है चुपचाप वनस्पति एक पात पर
 रोप रही है पेय प्राण का हाथ भुजा है
 मिट्टी पानी धूप सभी का और फुका है
 तन औरो का ताप बढा कर कई प्रात पर

अगर विरोधाभाव रहे तो जीवन कैसा
 एक डाल के फूल एक स कहा खिन ह,
 अपन भी तो अग उदास दीख जात है,
 अपना मन भी मौन मौन ही ऐसा वैसा
 कह जाता है कौन कौन से मान मिले हैं
 किस किस मन को इष्ट अतप्ति सीख जात है

78 एनस्वित् है विश्व, अपापविद्धता जी की
 मनोराज्य है, और नही अनिवायतया है
 जीवन का उद्योग रजोमय कहाँ दया है
 और कहा सहयोग भाव है—धुधली फीकी
 आँखा मे अनुराग कहाँ से प्रणय बली की
 सुकुमारता उतार सकेगा विपमतया है
 जब दष्टि का विक्रम, वहाँ छवि भी कृपया है
 ध्यान भाव से प्राप्त कामना रम्य सभी की

भव का विभव विलास इधर है और उधर है
 आँखें ही तो और प्रवाहित दबी हाथ ह
 झोठी के तट, देश उसी स लहरात ह
 विश्वभर की भूमि दवाए हुए बुधर हैं
 इधर उधर दिनरात, कौन ना वह उपाय है
 जिस से नूनन मध रिरक्षिपु घहरात है

भोर वाट जो मौन गही थी साँझ छोड़ दी,
 चार बार क्या पाव उसी दुरी पर पटकू
 क्या पृथ्वी के प्राण श्मोम के जी मे खटकू
 चले जिधर भी पाव उधर ही ग्राट जोड़ दी
 जीवन का उत्साह बड़ चला, लीक मोड़ दी
 नई दिशा म अभी और मैं थोड़ा नटकू,
 भटक नटक कर प्राणविहारी सशय भटकू
 नए भाव के लिए चाह भी खुली छोड़ दी

यह अनंत आकाश एक सा कहा मिला है,
 पृथ्वी के भी रूप बदलते ही जाते हैं,
 सागर नूतन स्थान देख कर चढ़ जाता है,
 जग की हसी गुलाब अलग हर जगह खिला है
 कठ कठ के बोल भिन्न लय मे गाते हैं—
 परिवर्तन स रग और भी बड़ जाता है

76 मुझे आत्मकल्याण और प्राणा के परिचय
 ला ला कर चुपचाप दिया करता है मरा
 यह परिचय दिनरात निरंतर अपना घेरा
 और और विस्तार के लिए बिलकुल निभय
 तोड़ रहा है और श्वासधाराओं की लय
 सुनता है, फिर कान भूल कर घना अंधेरा
 गुन गुन कर स्वर-भाष बढाते हैं, यह डेरा
 दा दिन का है, प्यास पी चुकी युग क सशय

कल जो मुझ से उलझ गया था वह बचारा
 जान कहाँ कहाँ न नटक कर इधर आ गया
 और इधर भी भाव भिन्न दखे तो सीमा,
 कित का देता सीक ताव धाया द मारा
 जिस को पाया और और आघात खा गया
 सबको स, नूत गया नाबी पर रोन्ध

और लोग क्या बात कहें किसी बात पर,
 कहन दो कहनाव वभी क्या कही रका है,
 इमी तरह उद्वेग आप से आप चुका है
 सबद आप से हाव मिला कर किसी बात पर
 जाते हैं बुपचाप वनस्पति एक पात पर
 रोप रही ह पय प्राण का हाथ मुका है
 मिट्टी पानी धूप सभी का और फुका है
 तन औरो का ताप बढा कर कई प्रात पर

77

अगर विरोधाभाव रहे तो जीवन कैसा
 एक डाल के फूल एक स कहा खिन ह,
 प्रपने भी तो अग उदास दीख जात है,
 अपना मन भी मौन मौन ही ऐसा वँसा
 वह जाता है कौन कौन से मान मिने हैं
 किस किस मन को इष्ट अतृप्ति सीख जात है

78 एनस्विन्त् है विश्व, अपापविद्धता जी को
 मनोराज्य है, और नही अनिवायतया है
 जीवन का उद्योग रजोमय वहाँ दया है
 और कहा सहयोग भाव है—धुधली फीकी
 अँखा मे अनुराग कहीं से प्रणय कली की
 सुकुमारता उतार सकेगा विषमतया है
 जब दष्टि का विकास, वहाँ छवि भी कृपया है,
 ध्याव नाव से प्राप्त कामना रम्य सभी की

भव का विभव विलास इधर है और उधर ह
 अँखें ही तो और त्रवाचित दबी हाथ ह
 मोठा के तट, देश उसी से लहराते ह
 विश्वभर की भूमि दबाए हुए युधर है
 इधर उधर दिनरात, कौन ना वह उपाय ह
 जिस स नूतन मेव रिरक्षिपु धहरात है

बिस्सी बिन्नी की बात सूक्ष्मतम पट पर मन व
रच देती है चित्र एक से एक मलोन
जिन को मन मुग्धान गिरा कर जादू टोन
घाँसा भ घाँसा दिला देती है तन के
रोम रोम म हृष उमड घाँसा है घन के
पाग घघन की पूछ-पछ घाँसर स होन
सगती है दिनरात घोर जीवन म खोन
के सम हो कर लीन भाव बनत हैं जन के

बाता की ही याद चाँदनी बन जाती है,
दुसा की बरसात बदल कर घघकार का
वह भारी परिधान सामन सजल सुनहला
शीतल नया दुकूल लिए घाँगे घाँती है
मद मद सायास छिपा कर चिह्न हार का
करती है स्वीकार प्राप्य सब कह कर पहला

80 जीवन म हम दोष्क हुए—अपन को तोल
सदरो पर अविराम जहाँ तरत जात हैं
वहाँ श्वास प्रश्वास क्रिया करत जात है
सहज सहज दिनरात बारि म कोई बोले
तो क्या बोले और मम यदि अपना खोले
तो किस मन से नित्य जीव मरते जाते है
डूब डूब कर और और डरते जाते हैं,
आदोलित मन प्राण अलग ही अपने को ले

धाराएँ अनुकूल और प्रतिकूल कई है
जिन स असावधान कभी क्या बच पाएँगे,
सावधानता एक अनेकानेक नया से
कहाँ कहीं आघात निबेरेगी, विजयी हैं
सेनाभो के व्यूह मरण की, उतराएंगे
मर मर कर तराक उपेक्षित पास गयो स

मैं गुलाब की छाव पकड़ कर मगन हो गया,
जीवन रस में रग-रेंगी आभा होती है
ऐसी, और अप्रुव काल की वह मोती है
जिस की नव पहचान प्राप्त कर गगन हो गया
जो पहले था शून्य, भाव से नगन हो गया
उसे सबत जान मान कर अब सीती है
सुप्त से चिता और दधर मानस मोती है
श्री शोभा-सपन, दुरित का दमन हो गया

आसा देखी है दीर्घाण भूलक जीवन की
भूमितलाश्रित पास उसी के सीस उठाए
अभिवादन के भाव दिखाती महाकाश को
लघुता से उमुक्त, वही गुलाब त्रिभुवन की
स्वर-लहरी की तान सरीखा आज झुठाए
हुए चुनौती एक दे रहा है विनाग को

82 वह मोहन आनंद, कहाँ है, जो सब का है
जिस के लिए अधीर आज हम तुम या वे है
बल के आनतय स्वरित केवल कल के है
निपट बालुका राशि विबीण हृदय अब का है
कणक्ष वधनहीन, अदय स्वप्न कब का है
जो आखा से दूर हो चुका है छलक है
धुतिया में अध्यास चित्र जो मगजल के है
सत् का अनुसधान अनुगतिक है, तब का है

नव प्रस्फुटित प्रसून व्योम अपना लेता है
नीरवता से और दूसरा के रव उस पर
रख कर कप-दारग प्राण की आकुल भाषा
लिख देत ह, कम समय को बर दता है
तभी विशय विशेष विशेषण साग्रह सुदर
दे कर वाक्षित अथ पिहात है अभिलाषा

छूट रह ह बाण दिसाया स प्रवाग क 83
 राँप रह ह प्राण समभना अभी शेष है
 इन वा प्राणि प्राय, पेय वलंग ही कलंग ह
 या अदम्य अपनाव सघटन स विनाश क
 मउ पर गहगा टूट पडेगा घोर पाग क
 पठिन पाँग न छूट जायगा जहाँ दस है
 तिल हुए कल्याण, निरधक वास नग है
 जब प्राणा के प्राण हुए चित द्रव्य नाग क

मृत्सना के अनुग्रह तप्त हैं और कीण हैं,
 छाती म ही भूमि छिपा कर जीवन अपनी
 कक्षा म विद्रुत है कोमलता प्रचडता
 मात्रा द्वारा मेय वस्तु है आज जीण है
 चिर सत चित् भानद, गई सरिताए उफनी
 विषम गिलाएँ तोड, सडिता है अखडता

84 क्षित दोस्ता तो क्षेय आप ही प्रागे प्राया,
 हम हैं कितने काल, गता के दिन गिनता के
 हो जाते हैं और अतीत विगत बिगती के
 स्वर स्वर को लिपिबद्ध करा देता है, छाया
 अकित मत्वर ज्योति करा स हो कर भाया
 जीवनव्यापी दौडधूप की श्री छिनती क
 रूपारूप विचित्र चित्र देती है जी के
 भेद दिखा कर नित्य जिस गीता ने गाया

हम सस्वर सौदय समभते है, जाते है
 जीवन पथ पर पास उसी के उम के द्वारा
 समाधान कुछ प्रश्न हमारे सुन लेते हैं
 हम उस की विश्वास छाह म सुख पाते है
 अनुचितन म नीन और कुछ और सहारा
 माग माग कर मौन भाव भी चुन लेते हैं

शोषण मही तपन ही
 तोषण, प्लोषण और विस्थिति अनुपस्थिति से
 जीवन का अविराम उक्त सत् की प्रस्थिति स
 करता है। दिनरात एतद्वत् सकल्प तपन ही
 प्रसत् उजागर रूप उभावाश्रयी ग्लपन ही
 कर जाता है भाव परस्परस्थिति स
 देते हैं विनियोग अवभादव्यापी अस्थिति स
 सतुलनात्मक ज्ञान जो है एक तपन ही
 देता है स्वनिशेष यह।

जाग कर लहराता है
 वारिज जीवन जाग तक उस का अचल
 फैला हुआ मजोर व्योम भ्रूह उगते हैं
 यामे हुए अघोर और परिचय गहराता है
 यहाँ वहाँ निर्बाध, स्वतः फलाए चचल
 चेतन भाव-विमोर, ही चारा चुगत हैं
 लग उड़ते हैं और य।

86

बार बार आरती की गई
 हार हार कर, बाल मात्र तक नहीं पमीजा
 चिता चिता से, मध दूगा के पा कर नीजा
 निस्वर सस्वर का गुन है, कब मुनी गई
 पृथ्वी-अचल प्राकार बाल के मही ली गई
 उन की करुण क्षय बार क्या, जीवन छोडा
 इन की सुध एत धार का ले कर माना
 ऊपर नीचे, पृथ्वी, समपण-वृत्ति जी गई
 घोर रहा था।

मान घोर प्रहनामा के
 बार बार ध्यान, कठ म तपन द कर
 कालकूट को ही व्योम नितिप्त हो गया
 यह विचित्रता की उजाति रजामया व न्नाह
 स्थिति नयन कर, धारणाया क्षिति कर
 भेल रही है, प्रत्य विचित्र हो गया
 भागी है सचस्व।

कोई स्थान अगम्य नहीं है मरण के लिए 87
 और अवधि का बंध नहीं है, अवधि हवा है
 उस के लिए निदान नहीं है और दवा है
 आपातत निरर्थ किसी के वरण के लिए
 कुठित हुआ कभी न, जगत् म चरण के लिए
 पाया नहीं विरोध, उसे किस की परवा है,
 किस के भय स भीत हुआ है, दुख अथवा है
 कभी किसी का, रच न सोचे हरण के लिए

उपवन का वह फूल अभी बल तोड़ ले गया,
 परसा उस ने दीर्घकाय तरु को तोड़ा था,
 नरसा जो हिम प्रस्थ उठा कर उस ने फेंके
 मरे सहस्र सहस्र, निदारुण शोक दे गया
 यदि यह था कतव्य, अभी तक क्यों छोड़ा था,
 प्रदन करे यह कौन, कौन उस का पथ छोके

68 तुम से परिचय-बंध नहीं था, नाम ले लिया,
 सुना तुम्हारा प्रश्न—अभी क्या मुझे पुकारा
 भ्रम भी अपने आप तिमिर के पार उतारा
 करता है—पहचान गया पहचान से जिया
 ले कर श्वास नवीन कहा, विश्वास से किया
 जो संबोधन एक उस स्वयमव सहारा
 दे कर सशय तोड़ आप ने मुझे उवारा
 आ कर स्वतः समीप जरा अवलंब दे दिया

अपरपार समुद्र नाम का लहराता है,
 बूद बूद सा एक एक अविभाज्य यहा है
 लहरा की गति एक एक को पी जाती है,
 यहाँ समुद्र, समुद्र अकेला, गहराता है
 गजन गजन मोन मोन है, शांति कहाँ है—
 बूद बूद के पास दो निमिष जी जाती है

भजरिया की गध यहाँ है, वहा है, तथा कहीं नहीं है, आप जहा भी जायें मिलेगी, हवा आप की आय डाल की डाल हिलेगी हप और उल्लास दिखा कर उसे सर्वथा समुल पा कर आप विमुख की त्यक्त सी कथा फिर गुन लेंगे और आप की व्यथा मिलेगी गधो के ही पत्र सहारे कली खिलेगी मन की, नीरव भाव पायगी दिव्य, जा न था

भजरियाँ आकाश हो गई हैं, यह कहना छोटी सी है बात, रात दिन वहाँ नहीं ह पगला गया बतास, गध यह बाँट रहा ह इस सुगध का नार चेतनामा को सहना है, परिपूरित घ्राण आज हैं, प्राण यही ह बरबे अगीकार, विश्व भी छाँट रहा है

90 खलो अपना पान, व्यथ है मुझे जताना, मैं जितना पहचान चुका उतना अपना लूँ, उस का हो लूँ और उस आत्मीय बना लूँ, जग है अपरपार, हृदय की बात बताना जीवन का इष्टाथ सत्य है इन घताना सब ये बम भी बात नहीं है फिर मैं पा लू क्या न धाति-सतोष, इन्ही अपना म गा लू बरब मीठे गीत, गीत का ले लूँ बाना

समुद्र है जो पृथ उर नम न स्वीकारा असा उख न भूमि की स्वय मान दिया है, अगडिहारी यानु इस बहता जाता है, कशी न भी आप इस धुपचार सहारा दिया, क्रिया तबार राग की स्थान दिया है द्रव न मो ता, मप द्रव नहता जाता है

कोई स्थान अगम्य नहीं है मरण के लिए
 और अवधि का बंध नहीं है, अवधि हवा है
 उस के लिए निदान नहीं है और दवा है
 आघातत निरथ किसी के वरण के लिए
 कुठित हुआ कभी न, जगत् में चरण के लिए
 पाया नहीं विरोध, उस किस की परवा है,
 किस के भय से भीत हुआ है, दुख अथवा है
 कभी किसी का, रच न सोचे हरण के लिए

उपवन का वह फूल अभी बल तोड़ ले गया,
 परसा उस ने दीघकाय तरु को तोड़ा था,
 नरसा जो हिम प्रस्थ उठा कर उस ने फेंके
 मरे सहस्र सहस्र, निदारुण शोक दे गया
 यदि यह था कतव्य, अभी तब क्या छोड़ा था,
 प्रश्न करे यह कौन, कौन उस का पथ छोके

88 तुम से परिचय बंध नहीं था, नाम ले लिया,
 सुना तुम्हारा प्रश्न—अभी क्या मुझे पुकारा
 भ्रम भी अपने आप तिमिर के पार उतारा
 करता है—पहचान गया, पट्टचान से जिया
 ले कर द्वास नवीन कहा, विश्वास स किया
 जो संबोधन एक उस स्वयमव सहारा
 दे कर सशय तोड़ आप न मुझे उवारा
 आ कर स्वतः समीप जरा अथवा द दिया

अपरपार समुद्र नाम का सहारा है,
 बूद बूद सा एक एक अविभाज्य यही है,
 लहरा की गति एक एक को पी जाता है,
 महीं समुद्र, समुद्र अकेला, गहराता है
 गजन गजन मौन मौन है, शांति वहाँ है—
 बूद बूद के पास दो निमेष जो जाती है

नवरियोँ अ स्व नृ है, द्य है, तथा 89
 वहाँ हों है, अत वहाँ नो ज्ञाने मिनवा,
 हवा अत का अत ज्ञान का ज्ञान हिन्ना
 ह्य और उन्नात्र निन्ना कर, उस सुवया
 समुख पा कर आप विमुख की त्यक्त सी क्या
 फिर गुन लेगे, और अत का व्यथा निन्ना
 त्यों के ही पख-महार कती खिलगी
 नन की, नारव भाव पावगी दिव्य, जो न या

नवरियाँ आकाश हो गई हैं, यह कहना
 छाग सी है बान, रात तिन वहाँ नहीं ह
 पना गया बनान, गध यह वाट रहा है
 इस सुगध का नार चेतनामा को सटना
 है, परिपूरित घ्राण आज हैं, प्राण यही हैं
 कण्ठे अमीकार, विद्व भी छोट रहा है

90
 रखा अपना जान, व्यथ है मुझे ज्ञाना,
 मैं जितना पहचान चुका उतना अपना नू,
 उस का हो लू और उस आत्मीय बना न,
 जग है अपरपार हृदय का वात बनाना
 जीवन का इच्छाव स्तर है, रस घटाना
 सब क बस की वात नहा है फिर मैं पा लू
 क्या न गति-नतोष, तना अपना म ता लू
 बढव माठ गाँव, गीत का ल नू बाना

समुय है जो पढ न्त नन न स्वीकारा
 ज्ञाना उत्र न भूमि की स्वय मान दिया है,
 जगद्विहारी वायु रस बढ़ता जाता ह
 पथा न नी आप इस चुपचाप सहारा
 निपा किना तयार खगा को स्थान दिया है
 इस न ना ता, मध इसे नहला जाता है

ले कर मर प्राण वात, किस को क्या दोग 91
 अधिपारोत्तर कम तुम्हारा मैं समझाऊँ,
 प्रपना हो परितोष, वसीयत ही लिख जाऊँ,
 क्षिति जन, पत्रभावाश, अग्नि व मैं भोग
 विषय सभी उमुक्ता, एक तो यह ऋण लोभ,
 जीवन का जो क्षेत्र अट्टुष्ट रहा दितलाऊँ,
 होगा उत्तरहृष, वही हरियाली पाऊँ
 नवल पल्लवित फुल्ल—तभी तुम सब के होंगे

प्राणा के प्रिय मित्र, दूसरी बात यही है—
 मुझे देख अनदेख नयन जो नीर वहाएँ
 उस का तुम अनात भाव स पीते जाना,
 और वहाँ क्या बात, बात जो अभी वही है
 सो बाता की बात वही है, प्राण नहाएँ,
 जीवन सागर पार अतीत सुनाएँ गाना

92 सुन्दरिया स तान दूगो के अलकार हं,
 कामल कोमल तार प्राण के बज जात हैं,
 हृदय हृदय के भाव राग से सज जाते हैं
 आकुल और अधीर स्वास जस पुकार है
 किसी के लिए मौन, प्रणय के परिष्कार है
 विनयाधान समेत अपलता तज जात है
 उत्सुक नयन सहृष आप ही मँज जात है
 जीवन सचित मँल, साज य सुरबहार है

अमृतस्यदी बोल प्राण म रम जात है,
 नयना म वह रूप तरंगे ले कर आता
 हं या ही दिनरात हृदय मे बस जाता है
 पूरा पूरा शात और रस थम जात है
 रक्त हृदय का और और चचन हो जाता
 है मन का अभिमान मान दे कर गाता है

मिली कहीं वह धूल कि ऐसे फूल उगाए, 93
 और रची चट्टान, अनेक पहाड़ कर दिए,
 वारिधि को संगीत के लिए सभी स्वर दिए,
 और बना कर प्राण प्राण को नदा चुगाए
 मान दान व भ्रम, उसी के लिए जुगाए
 कोमल भाव कठोर भाव, कुछ और वर दिए
 मिला मिला कर शाप, अगेही जान घर दिए
 तन के भू के नव्य भोग जो रहे भुगाए

इतने इतने काय किए, कत त्व जाताया,
 और प्रपञ्च अपूर्व गूढ्य म ला कर थापा
 फिर हो गया प्रलक्ष्य, लीन के लोचन हारे
 रचना को ही दक्ष दक्ष वर, और लगाया
 धा, पूण का अथ स्फुरित को मन में छापा
 जीवन-मथ पर नित्य, प्रश्न के उत्तर सार.

94 मधु का धीर समीर धनक सुगंध सँभाल
 मदाना को और पहाड़ा को फलान कर,
 नदिया स वर कलि लतामन का दुतार कर
 यन में पहुँचा और राम अनिराम निवान
 वृक्ष वृक्ष स शीघ्र तिमिरमय देग उजाग
 रागो क ही दीप जता कर फिर पुकार कर
 उम र मृग क मृग उजाद उत बगार पर
 जहाँ व था नद नग, भुजाण कष्ट-वजाण

यही एमार पाग उन्वगिग या पट्टया १
 कहा किमी म मर गग १, जहाँ किमी का
 महज नाव र छड़ रहा है वरन उड़ दना
 हा फिर सार १२०१ किजा मरगा दूपा १
 यह ऊकी मवार उ दग न्नी किजा का
 महर्ष का मरार नोड़ कर १११ नुद दना

तोड़ तोड़ कर माल ऐत से लग उड़ उड़ कर 95
 चल दत हैं नीड़ दिशा म य मगल के
 दिन है अपन काम स लगे सब, हलचल के
 स्वर उठते ह गति दखती है मुड़ मुड़ कर,
 ऐसी क्या है बात नि सब के सत्र जुड़ जुड़ पर
 लवनी म हैं तीन घाज को भूले कल के
 लिए सध उद्योग तर रह है, यह फल के
 सचय का है पव अभी हुक्के पुड़ पुड़ कर

बजे, उठा कुछ धूम, रग माला म, घाया
 हंसिए म उस्ताह, नया पहेटा वह सलटा,
 कुछ मालूम हुआ न, उधर से गीत बढाए
 मजूरिनी न, आम और मद से बीरामा,
 कटहल की अरधान उड़ी, फाया का पलटा
 उमडा वा कर ज्वार, सभी न वेग बढ़ाए

96 ' मेर ऊपर रग और ही पडा हुआ है
 जिस की भापा मौन चेतना के समान है
 है तो है अनात, जरा भी नही ध्यान है
 यह तो कोई ध्यय नही है बडा हुआ है
 अनुभव अपन आप, आप ही खडा हुआ है
 जीवनमयी कठोर भूमि पर स्वल्प ज्ञान है
 और अधिक अज्ञान यहा है जो विज्ञान है
 नान तनु ना क्षुद्र, भूमि म गडा हुआ है

जड़, चेतन, सब आज मुझे अपन लगत है,
 किरण का उदभास रूप जो जो लाता है
 अनुरजित उदगीय उसी का अचन मन कर
 होता है आकाश नए सगने जगत हैं
 जिन का परिचय - भाव स्वरा मे छा जाता है,
 किरण किरण के रग हुए मन के छन छन कर

कठफोड़े ने भार मार कर उन कीड़ा को
 बाहर आज निकाल लिया आहार के लिए
 जो तरु के अतस्थ शत्रु थे प्यार के लिए
 शुक्दपति न एक वक्षकोटर भीड़ा को
 तज कर कभी पसद किया, अपने नीड़ा को
 अच्छी तरह सँवार कर नए भार के लिए
 भली नाति तैयार हुए उपहार के लिए
 खग वसत के द्वार ताकते हैं पीठा को

97

आने वाले ग्रीष्म - दिवस तरु की छाया में
 बीतेगें, हर रोज, वहा मेला उमडेगा,
 नर नारी आबालवृद्ध चल कर आएंगे
 हरियाली में आप, ठहर कर इन माया में
 रमे रहेंगे और सीस पर से उखडेगा
 चिंता का ससार, विहग दल में गाएंगे

98 परस्परश्रित प्यार मुवन में नर नारी का
 वसुधरा-आकाश-स्रोत को छू लेता है
 इस प्रकार से अथ अनादि जोड़ देता है
 उन प्राणों में मौन जिह अपनी बारी का
 चिंता सकुल ध्यान कभी हल्के भारी का
 ज्ञेय विशेषक भेद नहीं देता खेता है
 नाव अथ से पूण सिंधु पर जो जेता है
 उस का है उद्योग, हिरास नहीं हारी का

यही प्यार का बीज अकुरित हो कर मन में
 नए रूप आकार ग्रहण करता है जिस से
 छाया अपरपार फैल कर छा जाती है
 दिशा दिशा में, देश देश में, निखिल मुवन में
 रग रग की और अयाचक जीवन किस स
 कौन अथता चाह चुका—जगती गाती है

तोड़ तोड़ कर बाल धत से खग उड़ उड़ कर 95
 चल देत हैं नीड़ दिगा म य मगल के
 दिन है अपन काम स लगे मव, हलचल के
 स्वर उठते हैं शांति दलती है मुड़ मुड़ कर,
 ऐसी क्या है बात कि सब के सब जुड़ जुड़ कर
 लवनी म हैं तीन आज को भूले बल के
 लिए सप उद्योग कर रहे हैं यह फल के
 सचय का है पव अभी हुक्के पुड़ पुड़ कर

बजे, उठा कुछ धूम, रग झोला म, आया
 हंसिए म उत्साह, नया पहेंटा वह सलटा
 कुछ मालूम हुआ न, उधर स गीत बढाए
 मजूरिनो ने, ग्राम और मद से वीरया
 कटहल की घरघाम उड़ी, पागा वा पलटा
 उमडा बन कर ज्वार, सभी न वेग बढाए

96 ' मेरे ऊपर रग और ही पडा हुआ है
 जिस की भाषा मौन चेतना क समान है
 है तो है, अनात, जरा भी नहीं ध्यान है,
 यह तो कोई ध्येय नहीं है बडा हुआ है
 अनुभव अपन आप, आप ही सडा हुआ है
 जीवनमयी कठोर भूमि पर स्वल्प जान ह
 और अधिक प्रज्ञान यहाँ है जो वितान है
 जान तनु वा क्षुद्र, भूमि म गडा हुआ है

जड, चेतन, सब आज मुझे अपने लगते है,
 किरणो का उदभास रूप जो जो लाता है
 अनुरजित उदगीथ उसी का अघा बन कर
 होता है आकाश नए सगने जगते हैं
 जिन का परिचय - भाव स्वरा म छा जाता है,
 किरण किरण के रग हुए मन के छन छन कर

कठकोडे ने मार मार कर उन कीडा का 97
 बाहर भाज निवात लिया माहार के लिए
 जो तरु के अतस्थ शत्रु थे प्यार के लिए
 शुकदपति ने एक वक्षकोटर भीडा को
 तज कर कभी पसन्द किया, अपने नीडा को
 अच्छी तरह सँवार कर नए भार के लिए
 भली भाँति तैयार हुए उपहार के लिए
 खग वसत के द्वार ताकते है पाटा को

भ्रान वाले ग्रीष्म - दिवस तरु की छाया मे
 वीतेगे, हर रोज, वहा मेला उमडेगा,
 नर नारी भावालवद्ध चल कर आएँगे
 हरियाली म आप, ठहर कर इस माया म
 रमे रहगे और सीस पर से उखडेगा
 चिंता का सतार, विहग दल म गाएँगे

98 परस्परश्रित प्यार भुवन म नर नारी का
 वसुधरा-आकाश-स्रोत को छू लेता है,
 इस प्रकार से अथ अनादि जोड देता है
 उन प्राणो मे मौन जिह् अपनी बारी का
 चिंता सकुल ध्यान कभी टुलके भारी का
 नैय विशेषक भेद नही देता खेता है
 नाव अथ से पूण सिधु पर जा जेता है
 उस का है उद्योग, हिरास नही हारी का

अही प्यार का बीज अकुरित हो कर मन मे
 नए रूप आकार ग्रहण करता है जिस से
 छाया अपरपार फैल कर छा जाती है
 दिना दिशा मे, देश देश मे, निखिल भुवन म
 रग रग की और अयाचक जीवन किम स
 कौन अथना चाह चुका—जगती गाती है

वदना दिन वा रग कुज के कुज खिले हैं
 उम गुलाब क राज, घनी कल जो उदास थे,
 ररित पत्तलवित प्राण सँभाल पास पास थे
 प्रपनी मम-तरंग उठा कर मौन मिले हैं
 चेतन जग त घोर हास के साथ हिले हैं
 ये समीर से मान छोड़ कर, जो विकास थे
 बल के ही ऐतिह्य, घाज के घनायास थे
 वनव, — प्राणो के प्रहार चुपचाप मिले हैं

बड़े मोर ही रश्मि उतर आई दुलराया
 और कहा, क्या हानि तुम्हारी यदि य बाटे
 कभी तुम्हारा अंग नहीं छोड़ते क्या दुःखा
 कटकमूपित रूप यही है जिस ने पाया
 यह प्रसून उपहार, दूसरो के जो बाटे
 नहीं पडा , आकाश ने तुम्हें प्यार से छुआ

100

आज विश्व की भक्ति अनाश्रित भटक रही है
 भूत काल की और भविष्य काल की जानी
 अनजानी आवाज, प्राण के पट की छानी
 उस को नित्य पुकार रही है खटक रही है
 यह अजीब सी बात द्विधा से लटक रही है
 यह चेतन की डोर पकड़ कर किस ने तानी,
 किस न ऐसा काम किया कर्ता वह जानी
 है अथवा नादान—प्रश्न ये पटक रही है

ये चिर पीडित प्रश्न घरा सडको, गलियो मे
 हाट बाट म, आत निरतर घूम रहे हैं
 अभी अभी चुपचाप है अभी चिल्लाते हैं
 सारा जग हैरान हो गया है कलिया म
 कपन है अविराम कहीं स स्रोत बहे हैं
 सदेहो के, लोग डूबते ही जाते हैं

सन्निक बूट विशाल एक हम भी बनवा लें,
 जितना यह आवाग बडा है, फिर हो जाएँ
 खडे दख कर छाँह, अनिच्छा हो—सो जाएँ,
 किसी तरह भी बात करें मन को मनवा लें,
 खाई से ही पास भिटगा, हम बनवा लें,
 मर जाएँ तो खैर—नहीं तो फिर वा जाएँ
 हम रक्षा क रामबाण, चाहे खो जाएँ
 सुरबि, शील, सोजय—वितान नए बनवा लें

101

जिस स अपने प्राण न धरती स उड जाएँ
 अमेरिका, इगलड, रूस जो आज बडे हैं
 हेतु यही है, आज विशाल बूट को छाया
 के नीचे ससार समेट हैं मुड जाएँ
 हम भी लख कर मोड, अयथा व्यथ खडे हैं
 घरा विरोपित दड सरीखे, क्या कुछ पाया

102

टूट रहे हैं शृंग पहाडो के उंचाइया
 ऊँचे चढ कर तग भा चुकी हैं, अब गिर कर
 नीचे का भी भेद देर लेन को फिर कर
 खड खड म फल रही है वे लडाइया
 जो जीवन को लूट चुकी हैं, अब बडाइयाँ
 बन बन कर फिर अश्व आश्व म प्राय घिर कर
 ले कर मोहक रूप काल के जल को निर कर
 छा जाती है मुग्ध मौन पा कर बधाइयाँ

य लडाइयाँ मौन आज भी कहीं हुई हैं—
 अपनी अपनी राह बदल डाली नदिया न,
 मैदानो के रूप घोर के घोर हो गए,
 जगल मे हैं धाम, दशाएँ यहाँ हुई है
 कुछ की कुछ—आवाज सुनाई है सदियो ने
 सुन सुन कर दिनगत कहा के कहीं खो गए

क्या हिलाइए हाथ, पाँव भी क्या पिराइए,
 क्या उठाइए भ्रूल, वात भी तो कोई हो,
 दूढ़ रहे हँ लोग क्या जैसे गोइ हो—
 कितना है आवेश, हेरिए तो हिराइए,
 आरा तक बितक दुआ माथा चिराइए
 वही बठ चुपचाप, अगर जिह्वा सोइ हो
 तो क्या है उपचार, भारती जो रोई हो
 ता अपना कर धँप वही कस पिराइए

परिवतन की बात—कई परिवतन हम भी
 अपनी आखा देख चुके हैं, परिवतन की
 परिभाषा उपयुक्त बराबर हम न की है
 कविता का हम मम जानते हैं हम मम भी
 और वेश भी बूझ चुके हँ लयनतन की
 माया से भी मुक्त रहे परिपाटी ली है

104

नीरव दीपालोक दष्टि को खींच रहा है
 अधकार मे वार वार दूसरा सहारा
 कोई नी तो और नहीं है जीवन हारा
 एकाकी अवसन पडा है सींच रहा है
 जलद कौन कातार, तृपित स सींच रहा है
 अपन लोचन लोल, गगन का कोई तारा
 नहीं हमारे पाम क्षीण किरणा की धारा
 भेज रहा है श्वात हृदय को भींच रहा है

एकाकीपन मौन मौन यह सिरा सिरा म
 दौड़ रहा है व्यग्र रक्त बन कर क्या जान
 आकुलता किस ओर उठा कर ले जाएगी
 इस तट से किस समय अग्नि भी आज गिरा म
 उद्दीपन का काय छोड़ कर क्या कुछ लान
 तम से एकाकारप्राय है सुध आएगी ?

क्या हिलाइए हाथ, पाँव भी क्यों पिराइए,
 क्या उठाइए आँख, बान भी तो कोई हो,
 दूढ़ रहे २ लोग क्या जैसे कोई हो—
 कितना है आकाश, हेरिए तो हिराइए,
 आरा तक कितक हुआ माथा चिराइए
 वही बैठ चुपचाप, अगर जिह्वा सोई हा
 तो क्या है उपचार, भारती जो रोई हो
 ता अपना कर धम वही कस पिराइए

103

परिवर्तन की बात—वई परिवर्तन हम भी
 अपनी आँखा देख चुके हैं, परिवर्तन की
 परिभाषा उपयुक्त बराबर हम न की है
 कविता का हम मम जानते हैं हम कम भी
 और वस भी यूँक चुके हैं तम नर्तन की
 भाषा स भी मुक्त रहे परिपाटी ली है

104 नीरव दीपालोक दृष्टि को खींच रहा है
 अधकार में बार बार, दूसरा सहारा
 कोई नी ता और नहीं है जीवन हाग
 एकाकी अवसन् पडा है सींच रहा है
 जलद कौन कातार, तपित से भींच रहा है
 अपने लोचन नील, गगन का कोई तारा
 नहीं हमारे पास क्षीण विरगो की धारा
 भेज रहा है श्वात हृदय को भींच रहा है

एकाकीपन मीन मीन यह सिरा सिरा में
 लोड रहा है व्यग्र रक्त बन कर क्या जान
 आकुलता किम आर उठा कर ले जाएगी
 इम तट से किस समय अग्नि भी आज गिरा म
 उद्दीपन का काय छोड कर क्या कुछ लाने
 तम स एकाकारप्राय है सुध आएगी ?

सूख गए है लोर, आख के पास नही है
 अभी गुलाबी भार, अंधेरा वायु-लहर मे
 उमड़ रहा है वेग दिखाता हुआ, शहर मे
 सगाटे का बोध बिछा है, त्रास नही है
 फिर भी, फिर भी आज तुम्हारा हास नही है
 जो नेत्रा की ज्योति बना था नए पहर मे
 चिंता ही है शेष, दूर की घटा घहर मे
 विजयी व्याकुल कोंध रही है भास नही है

105

मेरे प्रार्थि प्राण पवन पर लहरात है
 और भाव एवाग्र तुम्हारे परिचित मुख को
 देख रहे है ध्यान तुम्हारा खींच रहा है
 उम अतीत की ओर जहा स स्वर ध्यान है
 जीवन का सदश लिए मेरे इस मुख को
 अत स्पदन नित्य रवन से सींच रहा है

106 तुम को अगर मदेह चाहना हूँ तो कहते
 कहते आ कर शब्द लाज से रूक जाते है
 और निवेदन भाव अचानक चुक जाते है
 क्या आखिर क्यों, प्राण वेग ये नीरव सहत
 जात है अचिराम, प्रखर धारा मे बहते
 रहते है दिनरात किसी दिन भुक् जाते है
 उन चरणो पर ध्यान चढा कर धुक जाते है
 अपन पथ की ओर और अपने मे रहत

है खो खो कर मान लक्ष्य पर अपने उमुख
 अजलियो के फूल कहा तक लिए जायेंगे,
 कही चुन लिए और कही जा कर लगा दिया
 अस्थिर है विश्वास श्वास को है इस का दुख
 फिर भी तो उपहार प्राण के दिए जायेंगे
 तुम न जो अस्तित्व लिया जी को जगा दिया

जो भी दिन दो चार दिए तुम ने सब के सब
 घायल थे, सुविशाल पख भी टूट गए थे,
 उन हसो के रान पडोसी छूट गए थे
 किसी दिशा में कौन पता देता कब के कब
 मजिल अपनी देख बड़े आगे, जब के जब
 मार मार कर पख चले तो फूट गए थे
 अनो से निरुपाय, वेग दल खूट गए थे
 चलचलाव का भोक् रह गया था अब के अब

इन हसो से बात एक भी कहा कर सका
 जब सारा आकाश घेर कर ये छाए थे—
 रूप, भाव, रस और प्राण तब बरस रहे थे
 वहा प्रतीक्षाशील दगा में इह भर सका,
 जब जब जग के स्वप्न लोचनो में आए थे
 तब तब मरे प्राण अकेले तरस रहे थे

108 कितन ही थे शब्द, बिठाया, कहा—बडे हो
 तुम्ही लोग यह बात और पहले पा जाता
 तो क्या होता रूप, और ही कुछ आ जाता
 जीवन मेरे पास आज तुम जहा खडे हो
 वहा तुम्ह पहचान चाहिए तभी कडे हो
 ममता का मडु मम छिपाए यदि गा जाता
 सभी तुम्हारे गान अ य तो वह छा जाता
 बन कर सब का सत्य, उसी के लिए लडे हो

बोले मुझ से शब्द—यहा स वहाँ, वहाँ स
 और वहा तब मौन तरंगित हम चलत है
 यह अपार आकाश हमारा अपना घर है
 हम जीवन के गूल फून सब वहा वहाँ से
 कहा कहा चुपचाप डालते हैं जलते है
 तभी अदम्य प्रकाश विश्वजीवन का बर है

ये विशाल घरवार बराबर घेर रहे हैं
 प्राणा को, जो भुक्त भाव ले कर आण हैं
 एक एक से तालमेल रच कर छाए हैं
 एक एक के भाव आँख से हेर रहे हैं,
 उन को अपनी ओर पथ से फेर रहे हैं
 अभी जिहोने देश-काल के रथ पाए हैं
 और भविष्यत विघ्न साँस में लिख लाए हैं
 जो आकाशापूण उही को टेर रहे हैं

ये विश्राम निवास अंगर सचमुच निवास हैं
 तो निवास के घाम और कितना रोकेंगे
 फिर कितने दिनरात प्राण इन की भाँवेंगे
 प्राणा के उच्छ्वास प्रसूना के विकास हैं
 विवसित सौरभ-सार बहंगा, जो टोकेंगे
 उसे व्यथना आप एक दिन के जानेंगे

110 मधुमक्खिया उड़ान भरा करती हैं दिन भर,
 फूल फूल का कोप जतन से ले जाती हैं,
 रचती हैं मधुचक्र वहीं जाते गाती है
 सचय करने और गान से उनको छिन भर
 कहीं मिला अवकाश उजाला उन को तिन भर
 जीवन का ही भव्य रूप है जब पाती है
 अधकार को पास, सार सग्रह लाती है
 परिकीर्षो में डाल दक्षती हैं वे—दिन भर

गया आज का और देखना है कल को भी
 रात समूहनिवास रहेगा और सबेरे
 किरणा के ही साथ ये सभी उड़ जाएँगी
 फूल, कली या पीध—राह में आए जो भी
 सब का रस सानद ग्रहण कर, कितने फेरे
 दिन म कर चुपचाप, साँस को जुड़ जाएँगी

मुझे एक भी इंट असह्यप्राय वणा की महति का बियास दिलाती है तप तप कर वसे वैसे एकरूप बे मब छप छप कर हो जाती हैं और दूय व्यत्यस्त धणा की वण - सत्ता निस्तार श्वाम म तिग्म प्रणो की प्रीति जगा कर मौन हुई, मन से नप नप कर जब जब घाया ताप तितिक्षा से नप नप कर चला गया चुपचाप, कहानी रही रणो की

111

इंट यहाँ असह्य भवन में लग जाती हैं एक एक की बात, शरपति के हाथ चिनारि करते करते साच समझ कर जड दते है, अभिलाषाएँ और दस कर जग जाती हैं रूप और प्रतिरूप बनाव तिगार—बिनाई परके अगोकार राह अपनी लेत है

112 लडा घामडा, वीर निए निप्पत्र, अकेला कपिश सुझाने वीरदार ये वीर सलीने भूम रह है, वायु - लहर म परिमल बोने का आकुल उद्योग कर रह है यह मला जो वसत - उल्लास सँभाये ह, दूल खेला है, विभिन्न रस स्वाद गंध म इम समीने को अधीर आकाश झुका है स्वर स्वर होन लगे और के और आज लहरो का रेला

एक एक के प्राण परस कर दिग्दिगत म पँज रहा है और वही स कोयल कू ऊ कू ऊ कू ऊ वाल कान धपनाए लेती है, रसाल के भाव वस गए हैं वसत म हवा उधर से मौन इधर अग जग को छू छू कर लम धार उताल गई वन गई चहैनी

दोपहरी है बूज रहे हैं उपर कपोती 113
घोर कपोत घोर चोच स चोच मिलाते
धुग्गा से कर सातुरोप धुपवाप खिसात
एक दूसर को, 7 कभी कवात कुछ होनी
है उनका उपहार वृत्ति प्राणा म बोती
है जीवन के धोज सटाने पग हिलात
बढ़ते हैं इस घोर घोर उग घोर, जितात
हैं जगती के स्वप्न स्वप्न हैं मन के मोनी

घोवा प्राय मोठ माड कर मिला मिला कर
हिलत डुलत घोर काल का मौन चाल को
देत दग कर भाव भर हैं इन को बिना
कभी किमी को रच भर नहीं यहाँ जिला कर
जी कर जीवन बिता रह हैं किनी हाल को
अपना लिया हुताग कही है पडिया गिनता

114 सुबिबसिताभार - निपीतवारि - वनराजी
मुलच्छाय प्रफुल-लता वीरुध तर-ललिता
श्रावण - धारामार - पीपिता ईरण चलिता
बह्नी वर्णाकार - प्रमून गोभिता भ्राजी
मेघश्याम - दिगत - चलप म बहुधा गाजी
अचिरप्रभा चनातभूमि मिहिवामकलिता
निद्रमान नद विमन, नदी - चादर उच्छलिता,
वेग नवीन नवीन दिवा रजनी न साजी

अपनी घनिकी धार पडज स रग मृग जलचर
जीवन के आघात भेल कर जीवमान हैं
हस्ति - महिष - वाराह उल्लसित घूम रहे हैं
वारिद का निर्घोष श्रावण कर वसुधा मल कर
गिबिलवध निरुपाय पडी है, विहग गान हैं
जल के तल पर और विटप सब झूम रहे हैं

नव दल लिए शिरीष खिला है कठिन ताप मे,
 किसी तरह जब ताप टला ता सुरभि- साँस से
 रजनी की चुपचाप रगो को प्रेम फाँस स
 बाँध दिया, सताप गया, इस नई छाप म
 ऐसा कुछ अव्यक्त व्यक्त हो गया आप म
 जग भर का अपनाव बनाए, गई गाँस से
 दुनिया का उद्वेग गया— अवशिष्ट पाँस से
 जड ने पाया खाद्य, आस नप गई नाप म

जीवन के जयगान पराजय मे भी दूने
 होगे, मन का खेद प्राप ही उतर जायगा,
 दिवस रहे या रात रहे यात्री को इस से
 क्या— सारा आकाश पख स अपन छून
 विहग अरुद्ध उडान भरेंगे, मनुज पायगा
 पद पद पर सदश नया मिल कर जिस तिस स

116 गए दिना के साथ वहाँ क्या मैं न त्यागा,
 मेरा जी ही बात जानता है यह पूरी,
 वहाँ वहाँ थे स्वप्न धीर कितनी थी दूरी
 उन स मेरी लास लाग भय स कर जागा,
 जीवन के दिन रात एक कर दिए, न माँगा
 कभी किसी से प्राप्य, कौन सी थी मजबूरी
 जिस ने सारी दौडघुप हर बार अपूरी
 छुडवा दी हे प्राण, आज का भी दिन भागा,

इस से अपन आप कुछ गही मैं स पाया
 अधवार म याद आ रही हैं वे बातें,
 जिग स कोई काम बिगो दिन जग म अपना
 नहीं बना, आवाज रो गई बन कर छाया
 ले कर दीपालोक दिलाएँगे क्या राँ
 स्मृति स भी ता छूट गया दगा जो रपता

जीवन जब तक क्षेप रहेगा तब तक धारा
इसी तरह निर्बाध बहेगी, जीत-हार का
अभिनय भी दिन रात रहेगा, घणाप्यार का
रग हृदय पर छाप छोड़ कर पय पर यारा
रूप रहेगा रात्रि दिवस के चक्कर द्वारा
आवाक्षाएँ वेश बदल कर गए भार का
प्रतिशिर पर आरोप करेंगी, कहीं सार का
पता न हागा और जगत में मारा मारा

मीन फिरगा फून, उसे कोई पूछेगा,
इस का कुछ विश्वास नहीं पूछेगा कोई
क्या, उस से क्या अर्थ मिलेगा, कही मिलेगा
कही प्रसन्न विकास करेगा, किस की देगा
स्वप्ना के सन्नेत सत्य की आभा खोई
अधकार के सिंधु बोच क्या यान मिलेगा

